संपादन डॉ. शंकर लाल शर्मा

भाषा : व्यावहारिक धरातल

डॉ. रामप्रकाश, डॉ. दिनेश गुप्त

185402

भाषा : व्यावहारिक धरातल

महात्मा ज्योतिबा फुले रुहेलखंड विश्वविद्यालय की पाठ्य पुस्तक

बी.ए. प्रथम वर्ष (हिन्दी भाषा) द्वितीय प्रश्न पत्र

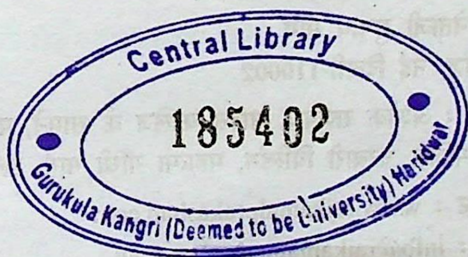
भाषा : व्यावहारिक धरातल

डॉ. रामप्रकाश

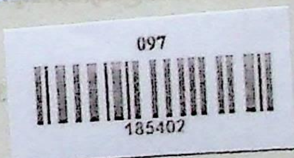
डॉ. दिनेश गुप्त

सम्पादन

डॉ. शंकर लाल शर्मा







राजकमल प्रकाशन
नयी दिल्ली पटना इलाहाबाद

मूल्य : 35.00 रुपये

पहला संस्करण : 2008

राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग
दरियागंज, नई दिल्ली-110002

शाखाएँ : अशोक राजपथ, साइंस कॉलेज के सामने, पटना-800 006
पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-211001

वेबसाइट : www.rajkamalprakashan.com
ई-मेल : info@rajkamalprakashan.com

बी.के. ऑफसेट
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032
द्वारा मुद्रित

आवरण : राजकमल स्टूडियो
ISBN : 978-81-267-1649-4

अनुक्रम

देवनागरी वर्णमाला, स्वर, व्यंजन

वर्णमाला

प्राचीन शिलालेखों और भोज पत्रों/ताड़पत्रों से लेकर अधुनातन सुपर कम्प्यूटर तक देवनागरी की वर्णमाला अनेक सदियों की विकास यात्रा करते हुए आज की वैज्ञानिक और सर्व स्थापित स्थिति तक पहुँची है। संस्कृत की वर्णक्रम की आधार भूमि पर स्थिर रह कर आज हिन्दी देवनागरी लिपि के वर्णों की शृंखला में कई वैज्ञानिक और व्यावहारिक संशोधन-परिवर्धन हुए हैं।

ध्यान देने की बात यह है कि नागरी के वर्ण चिह्न (ध्वनि चिह्न) संस्कृत व्याकरण के अनुसार वैज्ञानिक रूप से इस प्रकार वर्गाकृत है कि एक स्थान-विरोध से उच्चरित होने वाले अक्षर एक ही वर्ग में सम्मिलित हैं। जैसे मनुष्य के मुख-विवर में से ध्वनियों के उच्चारण में सहायक होने वाले स्थानों का यदि वैज्ञानिक विवेचन लिया जाए तो उसका क्रम इस प्रकार होगा—कंठ, तालु, मूर्धा, दन्त, ओष्ठ और नासिका। देवनागरी लिपि की वर्णमाला के सभी अक्षर इस क्रम से वर्गीकृत किए गए हैं—

कंठ से उच्चरित होने वाली ध्वनियाँ—अ, आ, क, क़ ख, ख़ ग, ग़, घ, ह और विसर्ग (:)

तालु से उच्चरित होने वाली ध्वनियाँ—इ, ई, च, छ, ज ज़ झ, य

मूर्धा से उच्चरित होने वाली ध्वनियाँ—ऋ, त, ठ, ड, ड़, ढ, ढ़, ण, र, ल, प

दन्त से उच्चरित होने वाली ध्वनियाँ—त, थ, द, ध, न, ल, स

ओष्ठ से उच्चरित होने वाली ध्वनियाँ—उ, ऊ, प, फ, फ़, ब, भ, म

नासिका से उच्चरित होने वाली ध्वनियाँ—ङ, ञ, ण, न, म और अनुस्वार (-)

कंठतालु से उच्चरित होने वाली ध्वनियाँ—ए, ऐ

कंठोष्ठ से उच्चरित होने वाली ध्वनियाँ–ऑ, ओ, औ,

दन्तोष्ठ से उच्चरित होने वाली ध्वनियाँ–व

सच बात तो यह है कि अन्य किसी भी भाषा में वर्णमाला का ऐसा वैज्ञानिक वर्गीकरण नहीं मिलता।

देवनागरी लिपि की वर्णमाला में मूलतः 11 स्वर (vowels) और 35 व्यंजन (Consonants) है। इनकी जानकारी नीचे दी जा रही है–

स्वर (Vowels)–'स्वर' वर्णमाला की ऐसी ध्वनियाँ हैं जो सर्वथा स्वतन्त्र उच्चरित होती है। फेफड़ों के भीतर से निकलने वाली हवा जब गले से होती हुई मुँह से बिना किसी रोक-टोक के स्वतन्त्र रूप से बाहर निकलती है। गले की धमनियों या स्वर-तन्त्रियों पर उसका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता तो ऐसी ध्वनियों को 'स्वर' के अन्तर्गत रखा गया है। स्वर स्वयं तो स्वतन्त्र रूप में उच्चरित होते हैं परन्तु व्यंजन वर्णों के उच्चारण में इन स्वरों की सहायता अनिवार्य रहती है।

वर्णमाला में 11 स्वरों की 10 मात्राएँ भी निधारित है जो शब्द निर्माण की प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है–

स्वर	मात्राएँ
अ	–
आ	ा
इ	ि
ई	ी
उ	ु
ऊ	ू
ऋ	ृ
ए	े
ऐ	ै
ओ	ो
औ	ौ

इसके साथ-साथ आगे चलकर अनुस्वार (ं) और विसर्ग (:) भी स्वरों में शामिल कर स्वर लिए थे, जो प्रायः 'अं' और 'अः' के रूप में लिखे जाते हैं। परन्तु ध्यान रहे कि हिन्दी वर्णमाला में इन्हें व्यंजन के रूप में ही मान्यता मिली है। इसका कारण यह है कि किसी भी व्यंजन पर अनुस्वार (ं) लगाकर ङ, ञ, ण, न नाम के व्यंजन के रूप में इसका उच्चारण होता है। इसी प्रकार किसी

भी स्वर के बाद विसर्ग (:) लगाकर उसका उच्चारण भी 'ह' व्यंजन के रूप में होता है। '(ँ)' चन्द्रबिन्दु नामक ध्वनि चिह्न स्वर के साथ लगाया जाता है जैसे अँ, आँ। इसका मतलब यह हुआ कि यह स्वर अनुनासिक है। इसके उच्चारण के समय फेफड़ों से निकलने वाली हवा आधी नाक से ओर आधी गले से निकलती है।

ह्रस्व स्वर–जिन स्वरों के उच्चारण में कम समय लगता है उन्हें ह्रस्व स्वर कहते हैं। जैसे अ, इ, उ। कविता के छंदों के परिचय में ह्रस्व स्वर का चिह्न '।' (खड़ी पाई की तरह)

दीर्घ स्वर–जिन स्वरों के उच्चारण में अपेक्षाकृत ज्यादा समय लगता है उन्हें दीर्घ स्वर कहा जाता है। जैसे आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ। **कविता में छंदों की जानकारी लेते समय दीर्घ स्वर का चिह्न 'ऽ' (अंग्रेजी के S की तरह) माना जाता है।**

व्यंजन–व्यंजन के बारे में परम्परागत रूप में कहा जाता है कि ये ध्वनियाँ स्वरों की सहायता से बोले जाते हैं। किन्तु भाषा का वैज्ञानिक आधार लेकर कहा जा सकता है कि मनुष्य के फेफड़ों से बाहर आने वाली हवा जब मुख विवर से बाहर निकलती है तो गले की स्वर-तन्त्रियों (झिल्लियों) के स्पर्श करती हुई बाहर आती है इस घर्षण से जिन ध्वनियों का उच्चारण होता है, उन्हें व्यंजन कहते हैं। उच्चारण करते समय कभी-कभी हवा स्वर-तन्त्रियों को ज्यादा स्पर्श करती है तो कभी कम टकराते हुए बाहर आती है। सभी स्थिति में व्यंजनों के उच्चारण में भी अन्तर आता है। यह भी महत्त्वपूर्ण है कि गले से निकलने वाली हवा मुँह में विभिन्न अंगों (जीभ, दाँत, होठ, तालु आदि) के विभिन्न स्थानों को भी प्रभावित करते हुए बाहर आती है और व्यंजन की भिन्नता दर्शाती है।

सभी व्यंजनों को उच्चारण-स्थान के आधार पर वर्गबद्ध करके स्वीकार किया गया है, जैसे–

क वर्ग	क	ख	ग	घ	ङ
च वर्ग	च	छ	ज	झ	ञ
ट वर्ग	ट	ठ	ड	ढ	ण
त वर्ग	त	थ	द	ध	न
प वर्ग	प	फ	ब	भ	म
		य	र	ल	व
		श	ष	स	ह

व्यंजन नामक वर्ण के उच्चारण में निम्नलिखित विशेषताओं की ओर ध्यान बहुत महत्त्वपूर्ण है–

(*i*) प्रत्येक व्यंजन से उच्चारण में 'अ' ध्वनि सम्मिलित होती है। जैसे क् + अ = क, म + अ = म, य् + अ = य।

(*ii*) 'ष' व्यंजन का केवल संस्कृत शब्दों में प्रयुक्त होता है।

(*iii*) 'ङ', 'ञ', 'ण', 'ड़', 'ढ' आदि व्यंजन किसी भी शब्द की आरम्भिक ध्वनि नहीं होती। 'ङ' और 'ञ' नामक व्यंजन स्वतन्त्र रूप से प्रयुक्त न होकर आगे आने वाले व्यंजन के साथ जुड़कर आते हैं। जैसे वाङ्मय।

आगत ध्वनियाँ–हिन्दी वर्णमाला में कुछ ध्वनियों को विदेशी भाषाओं से लिया गया हैं उन्हें आगत ध्वनियाँ कहते हैं। इन्हें भी समझना बहुत आवश्यक है–

(*i*) अरबी, फारसी और अंग्रेजी भाषा के कुछ व्यंजनों का उच्चारण भी हिन्दी वर्णमाला में किया जाता है। इन्हें व्यंजन के नीचे बिन्दु लगाकर लिखा जाता है। जैसे–'क़', 'ख़', 'ग़', 'ज़', 'फ़'।

क़िला, ख़त, ज़ुल्म, ग़जल, फ़ूल (Fool), (Rough) (रफ़) फ़र्क।

(*ii*) 'ऑ' ध्वनि अंग्रेजी के 'O' की तरह बोली जाती है। इसे अंग्रेजी के कुछ शब्दों के उच्चारण के समय उपयोग में लाया जाता है। जैसे (Office) ऑफिस, (College) कॉलेज, (Paul) पॉल, (Doll) डॉल, (Thought) थॉट।

(*iii*) हिन्दी व्यंजनों में 'ढ़' ('सीढ़ी', 'पीढ़ी') और 'ड़' (पड़, सड़ना) इन दो व्यंजनों को बाद में हिन्दी वर्णमाला में शामिल कर लिया गया। इसका कारण भी साफ है कि हिन्दी भाषा की जीवंतता और उदारता। इन व्यंजनों से हिन्दी में अनेक शब्द अपना अस्तित्व रखते हैं और हिन्दी को समृद्ध कर रहे हैं।

अघोष और सघोष व्यंजन–क वर्ग से लेकर प वर्ग तक के व्यंजनों में प्रत्येक वर्ग को पहला और तीसरा व्यंजन अघोष और दूसरा और चौथा व्यंजन सघोष कहलाता है जैसे–क वर्ग में 'क' और 'ग' = अघोष और 'ख' और 'घ' = सघोष हैं।

अघोष–जिन व्यंजनों के उच्चारण में गले से निकलने वाली हवा स्वर तंत्रियों (झिल्लियों) को कम प्रभावित करते हुए निकलती है, उन्हें अघोष व्यंजन कहते हैं।

सघोष–जिन व्यंजनों के उच्चारण में गले से निकलने वाली हवा स्वर तन्त्रियों (झिल्लियों) को अपेक्षाकृत ज्यादा प्रभावित करते हुए (टकराते हुए) बाहर आती है, उन्हें सघोष व्यंजन कहते हैं।

अघोष (वर्ग के पहले और तीसरे) तथा सघोष (वर्ग के दूसरे और चौथे) व्यंजनों के उच्चारण मात्र से कोई भी व्यक्ति गले पर पड़ने वाले प्रभाव से इनका अन्तर समझ सकता है।

संयुक्त व्यंजन–'क्ष' = (क् + ष), 'ज्ञ' = (ज् + ञ) और 'त्र' = (त् + र) नामक व्यंजनों को संयुक्त व्यंजन कहा जाता है। क्योंकि इनके निर्माण में एक से अधिक व्यंजनों का संयुक्त प्रयास मिलता है। इसी तरह आगे चलकर 'श्र' = (श् + र) को भी स्वीकार कर लिया गया।

द्वित्त–'बच्चा', 'कुत्ता', 'द्वित्त' आदि शब्दों में एक ही व्यंजन का एकाधिक बार उच्चारण होने से इन व्यंजनों को 'द्वित्त' कहा गया। जैसे 'च्च', 'त्त' आदि। ध्यान देने की बात यह है। संयुक्त व्यंजनों के निर्माण में इनके लिपि चिह्न एकदम भिन्न रूप में निर्धारित हुए। जैसे क्ष, त्र, ज्ञ, किन्तु 'द्वित्त' व्यंजनों में प्रायः व्यंजनों के समूह को यथावत् ही स्वीकार किया गया जो आज भी प्रचलित है। हाँ, 'त्त' के स्थान पर 'त्त' लिपि चिह्न को भी स्वीकार कर लिया गया।

शब्द विचार

हिन्दी वर्णमाला का अध्ययन करते समय यह स्पष्ट होता है कि स्वर और व्यंजनों के सहयोग से शब्दों का निर्माण हुआ है। भाषा की प्रत्येक ध्वनि (स्वर और व्यंजन) के लिए किसी-न-किसी प्रतीक चिह्न की व्यवस्था पहले से ही की गयी है। इन्हें लिपि चिह्न भी कहते हैं। इन लिपि चिह्नों की मान्यता अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित हो चुकी है। यह भी ध्यान देने की बात है कि सभी लिपि चिह्न संस्कृत भाषा में पहले से ही मौजूद थे जिन्हें प्रायः देवनागरी लिपि में ज्यों-का-त्यों स्वीकार कर लिया गया। हाँ, जहाँ कहीं और जब-जब नयी ध्वनियों अथवा आगत वर्णों और शब्दों को हिन्दी स्वीकार करके अपने परिवार को समृद्ध करती चली गयी वहाँ नवीन प्रतीक चिह्न (लिपि चिह्न) भी निर्मित कर लिए गए। इनका अध्ययन पिछले अध्याय में किया जा चुका है।

इस प्रकार यह भी स्पष्ट हो जाता है कि स्वर और व्यंजनों के लिपि चिह्नों को किसी-न-किसी व्यवस्था में एकत्रित कर देने पर शब्दों का निर्माण होता है। यहाँ हम 'शब्द' के पारिभाषिक स्वरूप के साथ-साथ इनकी निर्माण प्रक्रिया और वर्गीकरण का अध्ययन करेंगे।

परिभाषा–'एक से अधिक स्वर और व्यंजनों की लघुतम, व्यवस्थित और सार्थक इकाई को 'शब्द' कहा जाता था।' जैसे–कमल, लगन, मकड़ी, पीढ़ा, घर आदि।

ध्यान रहे कि शब्द हमेशा छोटी-से-छोटी व्यवस्थित इकाई है जो हमें कोई-न-कोई अर्थ प्रदान करती है। यह व्यवस्था बदल देने से यदि अर्थ नहीं निकलता तो उस व्यंजन गुच्छ की लघुतम इकाई भी शब्द नहीं कहला सकती।

यह भी महत्त्वपूर्ण है कि इस सार्थक व्यवस्था में जब कोई सार्थक विकास (बदलाव) होता है तो वह अपनी 'लघुतम' इकाई वाली शर्त को छोड़ देता है तब उसे शब्द न कहकर पद कहते हैं। जैसे–

शब्द	पद
कमल	कमलों
पीढ़ा	पीढ़े
घोड़ा	घोड़े, घोड़ों

कमल, पीढ़ा, घोड़ा (शब्द) अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखते हैं और उच्चारण के साथ ही अर्थ प्रदान करते हैं। परन्तु कमलों, पीढ़े, घोड़ों, घोड़े 'पद' का अर्थ और अभिप्राय तभी निकल पाता है। जब वे किसी-न-किसी वाक्यांश या वाक्य की व्यवस्था का हिस्सा बन जाते हैं।

स्रोत–इसका अभिप्राय है मूल स्थान, उद्‌गम, व्युत्पत्ति। जब कोई शब्द अपनी मूल भाषा या स्थान से किसी दूसरी भाषा में पहुँच कर उसका सहज अंग बन जाता है तो उस शब्द का स्रोत उसकी मूलभाषा का स्थान ही कहलाता है। हिन्दी भाषा में 'शब्दों' के स्रोत को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि यहाँ प्रायः संस्कृत से मूल रूप में शब्द ग्रहण किए गए हैं। इन्हें 'तत्सम शब्द' कहा जाता है। इनकी बनावट और लिपि-चिह्न भी उसी तरह हैं। जैसे स्वस्थ, स्वास्थ्य, ज्योत्स्ना, उज्ज्वल, प्रेरणा, प्रश्न, प्रस्थान, स्थान आदि। दूसरे 'देशी' शब्दों के रूप में हिन्दी और उसकी बोलियों में जिन शब्दों का प्रचलन बहुत अधिक होता है। जिन्हें जन समुदाय प्रायः भाव और विचारों के आदान-प्रदान में इस्तेमाल करता है उन शब्दों को भी हिन्दी में स्वीकार कर लिया गया है।

तीसरा स्रोत है आगत शब्द। अरबी, फारसी या अंग्रेजी या किसी अन्य विदेशी भाषा के शब्दों को भी हिन्दी में ज्यों-का-त्यों स्वीकार कर लिया गया है। जैसे—ख़त, गुलाम, फेल, चिमटा, तवा, परात, बटन, कमीज, पैन, पैंसिल आदि हिन्दी भाषा की उदारता और गतिशीलता इसी बात में सिद्ध होती है कि इसने हजारों शब्दों को अपनाकर अपनी प्रकृति और प्रचलन के अनुकूल ढाल लिया है। इन शब्दों को अलगाना अब कठिन होता जा रहा है।

संक्षेप में, कहा जा सकता है कि मूलरूप में तो संस्कृत भाषा ही हिन्दी के शब्दों की स्रोतस्विनी है। परन्तु लोक व्यवहार और लोक जीवन ने भी हिन्दी शब्दों को समृद्ध किया है। साथ-ही-साथ भिन्न विदेशी भाषाओं से भी हिन्दी में असंख्य शब्द समाहित हो चुके हैं।

'स्रोत' के मूल अभिप्राय के साथ-साथ हिन्दी में ऐसे असंख्य शब्दों की पहचान और प्रचलन भी सुचारू रूप में हो रहा है जिनका सम्बन्ध नए-नए शब्दों के निर्माण से है। शब्दों के इस परिवार में निर्माण-प्रक्रिया के अनेक आधारों का अध्ययन किया जाता है।

भेद और वर्गीकरण

हिन्दी भाषा के शब्द-संसार पर ध्यान दिया जाए तो बहुत महत्त्वपूर्ण और आश्चर्य चकित कर देने वाली सच्चाई सामने आती है। वह यह कि हिन्दी में प्रचलित और व्यवहार में लाए जाने वाले असंख्य शब्दों का केवल उनके स्रोत के आधार पर ही परिचय नहीं लिया जा सकता बल्कि उनकी बुनावट, बनावट और निर्माण की प्रक्रिया और प्रभेद के द्वारा भी उनकी समृद्धि को पहचाना जाता है। यह बहुत समझ-बूझ और सुरुचिपूर्ण तो है ही साथ ही हिन्दी के प्रयोक्ता और गम्भीर अध्येता के लिए भी उपयोगी है।

इसलिए शब्द-निर्माण की प्रक्रिया को अनेक प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है–

1. रचना की दृष्टि शब्दों के भेद

(क) **रूढ़ि** =सामान्य अर्थ वाले मूत्र शब्द= घोड़ा, पीला, कमल आदि।

(ख) **यौगिक** = दो मूल शब्दों के योग से बने शब्द = पाठशाला = पाठ+शाला, विद्यालय=विद्या+आलय आदि।

(ग) **योगरूढ़ि**= दो या अधिक शब्दों या व्याकरणिक इकाइयों से मिलकर वनने वाले शब्द। इनका अर्थ सर्वथा रूद होता है। = जलज = जल+ज = चन्द्रमा जलनिधि, दशानन आदि।

2. विकारी शब्द–जो शब्द, संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण लिंग वचन क्रिया आदि के आधार पर परिवर्तन शील होते हैं और उनमें अर्थ की भिन्नता आ जाती है। उन्हें विकारी शब्द कहते हैं। हिन्दी में 'अव्यय' शब्दों को छोड़कर सभी शब्द विकारी माने जाते हैं।

3. अविकारी (अव्यय) शब्द–जिन शब्दों में व्याकरणिक इकाई में परिवर्तन होने पर भी किसी प्रकार का बदलाव नहीं आता। वे अपने मूल रूप में ही व्यवहार में लाए जाते हैं। उन्हें अविकारी (अव्यय) शब्द कहते हैं। जैसे–अथवा, यदि, यद्यपि, तथा, तथापि यथा आदि।

4. इतिहास-स्रोत पर आधारित शब्द :

तत्सम	=	पुत्र, दुग्ध, ग्राम, हस्त, रात्रि, लक्षण।
तद्भव	=	पूत, दूध, गाँव, हाथ, रात, लच्छन।
देशी (देशज)	=	रोटी, दाल, लोटा, टट्टू।

विदेशी (आगत)–

अंग्रेजी	=	रेलवे स्टेशन।
अरबी	=	गरीब, फकीर, मालिक,
फारसी	=	तमाम, किताब, शादी
तुर्की	=	तमगा, तोप, कालीन, लाश
पुर्तगाली	=	प्याला, बाल्टी
चीनी	=	चाय, तूफान, पटाखा, लीची
ग्रीस	=	सुरंग, दाम

द्विज–दो भाषाओं के मेल से बनने वाले शब्दों को द्विज कहते हैं–

(*i*) अंग्रेजी + हिन्दी	=	टिकटघर, डबलरोटी, रेलगाड़ी।
(*ii*) अरबी + हिन्दी	=	रीति-रिवाज़, हुक्का-पानी।

उपसर्ग द्वारा शब्द निर्माण–

हिन्दी उपसर्ग	=	आलोचना, असम्भव, संवेदना।
उर्दू उपसर्ग	=	बावजूद, बेख़बर,- बामुलाहिजा

प्रत्यय द्वारा शब्द-निर्माण–सफलता, अधिकतम, एकत्व, श्रेष्ठता, आदि, आर्थिक, तरंगित,

समास के आधार पर शब्द-रचना–गृहागत, हथकड़ी, रसोईघर, ऋणमुक्त, जन्मान्ध, राजपुरुष, दशानन, राष्ट्रपति, दोपहर, चुतुर्भुज आदि।

ध्वन्यार्थक शब्द की रचना–घिन-घिन, छन-छन, चम-चम, हिन-हिन, ता-ता, थई-थई आदि।

इनके अतिरिक्त ज्ञान-विज्ञान, तकनीकी, प्रोद्योगिकी, साहित्य कला, शास्त्र, विद्या, वाणिज्य = व्यवसाय, मोलभाव, सूचना संचार, दूर संचार अनेक अनुशासन, रीति-रिवाज, इतिहास, परम्परा समान शास्त्र आदि के आधार पर हिन्दी में अनेक शब्दों की रचना होती है।

इनमें अनेक शब्दों का आगमन, निर्माण और प्रयोग-प्रचलन होता रहता है।

इसी प्रकार शब्द-शक्तियों = अभिधा, लक्षण, व्यंजना और मुहावरे तथा लोकोक्तियों के अन्तर्गत में अनेक शब्द बनते और प्रचलित होते रहते हैं।

स्पष्ट है कि शब्दों का संसार और वर्गीकरण एक सुरुचिपूर्ण और ज्ञानवर्धक सच्चाई है। इससे अपने आपको परिचित कराते रहना हमारे भाषा ज्ञान और भाषा व्यवहार का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है।

आज के भूमण्डलीकरण, विश्वग्राम और इंटरनेट की अवधारणा तथा

संचार-क्रान्ति के युग में अनेक शब्दों का निर्माण और प्रचलन हो रहा है। कभी-कभी इनमें व्याकरण के प्राचीन नियम भी लागू नहीं हो पाते। फिर भी इन शब्दों की रचना, सार्थकता और व्यवहार ने हिन्दी को बहुत समृद्ध किया है। यही कारण है कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी भाषा की वैज्ञानिकता और व्यावहारिकता सहज सिद्ध हो चुकी है।

हिन्दी शब्द-सम्पदा

हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सकारात्मक स्थिति के सन्दर्भ में यह जानना आवश्यक है कि यह अपनी गतिशीलता और उदारता के लिए प्रसिद्ध है। इसका कारण हिन्दी की व्यावहारिकता और प्रयोजन परकता तो है ही, साथ ही इसकी अनेकशः शब्द-सम्पदा ने भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। पिछले अध्याय में हिन्दी की शब्द-रचना की कुछ प्रक्रिया को समझने की कोशिश की है। इसी क्रम में यहाँ हम कुछ अन्य प्रमुख धरातलों पर हिन्दी की शब्द-सम्पदा का परिचय प्राप्त करने की कोशिश करेंगे। इन धरातलों में प्रमुख हैं—पर्यायवाची शब्द, विलोम (विपरीतर्थक) शब्द, वाक्यांश के लिए एक शब्द, श्रुतिसम भिन्नार्थक शब्द, समूहवाची शब्द और धवन्यात्मक शब्द।

पर्यायवाची शब्द

प्रत्येक उन्नत भाषा में ऐसे कुछ शब्द होते हैं जिनके समान अर्थ देने वाले अन्य शब्दों की संरचना भी मिलती है। अर्थात एक ही अर्थ प्रदान करने वाले एक से अधिक शब्दों को 'पर्याय' या 'पर्यायवाची' शब्द कहते हैं। जैसे—'आँख' के लिए नेत्र, चक्षु, नयन आदि शब्दों का प्रचलन है। इसी प्रकार 'अंक' के लिए संख्या, क्रमांक, गोद नम्बर आदि शब्द। इस प्रकार स्पष्ट है कि एक प्रकार के भाव या विचार को प्रकट करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि एक शब्द से ही काम चल जाए। एक शब्द से मिलता-जुलता दूसरा शब्द भी उस भाव या विचार की स्पष्ट अभिव्यक्ति कर सकता है। यहाँ कुछ पर्यायवाची शब्दों का संकेत दिया जा रहा है—

अंकुर = आँखुआ, कलिका, कोंपल
अंग = अवयव, भाग, हिस्सा

अंचल = आँचल, पल्ला, पल्लू
अचल = अडिग, अविचल, अटल
गंगा = स्वर्गनदी, मन्दाकिनी, सुरसरी
कटाक्ष = व्यंग्य, आक्षेप, छींटाकशी
अंबर = आकाश, आसमान, गगन
कमला = ऋद्धि, लक्ष्मी, श्री-सिंधुजा
किसलय = अँखुआ, अंकुर, कोंपल
खंजर = असि, कटार, कृपाण
गधा = गर्दभ, खर, गदहा
गृह = आलय, आवास, घर
गोदाम = आगार, भंडार, मालघर
जंजीर = बेड़ी, शृंखला, साँकल
जनपद = अंचल, खंड, जिला, हलका
तन्द्रा = ऊँप्प, उनींद, आलस्य, खुमारी
तवया = आत्मजा, कन्या, बेटी, सुता
दुकूल = ओढ़नी, उत्तरीय, दुपट्टा
दुर्गा = अंबा, भवानी, गौरी, चंडी
दुर्ग = कोट, गढ़, किला, परकोटा
परिंदा = खग, पंछी, पक्षी, विहंग
परिजन = कुटुम्बी, भाईबंध, रिश्तेदार
प्रज्ञा = अक्ल, मति, धी, मेधा, बुद्धि
प्रतिकूल = उलटा, खिलाफ, विरुद्ध
भाषण = प्रवचन, व्याख्यान, वक्तव्य
भीम = उग्र, डरावना, विकराल, भयंकर
मसौदा = आलेख, प्रारूप, ख़ाका, मसविदा
महबूब = प्रणयी, प्रिय, प्रेमी, साजन
योषिता = नारी, पत्नी, युवती, स्त्री
रंगमंच = नटशाला, रंगभूमि, अभिनय स्थल
लक्ष्मी = इंदिरा, कमला, श्री, पद्मा
विरल = अनुपम, दुर्लभ, अनूठा
विवेक = बुद्धिमत्ता, सूझ, समझ

विष	=	गरल, जहर, हालाहल
शकुन	=	घड़ी, मुहूर्त, लग्न, लक्षण
शहीद	=	बलिदानी, वीरगतिप्राप्त, कुरबान
शृंगार	=	अलंकरण, सजावट, सिंगार
सबक	=	शिक्षा, सीख, उपदेश
सरस्वती	=	वाग्देवी, भारती, शारदा
स्तुति	=	गुणगान, प्रशस्ति, स्तवन
हंता	=	घातक, नाशक, संहारक
हमदर्द	=	हितैषी, शुभाचिंतक हितेच्छु
हवाला	=	उदाहरण, दृष्टान्त, प्रमाण
हुनर	=	कला, करतब, दक्षता
हौज़	=	कुंड, नांद, हौदी
हौसला	=	उत्साह, धैर्य, साहस

विलोम शब्द

किसी शब्द के उल्टे अर्थ में प्रयुक्त होने वाले शब्दों को विलोम या विपरीतार्थक शब्द कहते हैं। जैसे—जन्म-मुत्यु, अंधकार-प्रकाश, जमीन-आसमान आदि। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि संज्ञा का विपरीतार्थक संज्ञा, विशेषण का विशेषण और क्रिया विशेषण का विलोम क्रिया विशेषण ही होता है। जैसे—

अक्षत	=	विक्षत
अगाड़ी	=	पिछाड़ी
अग्र	=	पश्च
अच्युत	=	च्युत
अतुल	=	तुल्य
अनुभवी	=	अनुभवहीन
उज्ज्वल	=	धूमिल
उत्तरी	=	दक्षिणी
उन्मूलन	=	रोपण
उपयुक्त	=	अनुपयुक्त
एकत्र	=	विकीर्ण
ऐश्वर्य	=	अनैश्वर्य

औपचारिक = अनौपचारिक
कृत = अकृत
घोषित = अघोषित
चिंत्य = अचिंत्य
पुरस्कृत = दंडित
प्रवेश = निकास
महत्ता = लघुता
वयस्क = अवयस्क
वाजिब = गैरवाजिब
विकृत = अविकृत
विधि = निषेध
व्यमिचारी = सदाचारी
समष्टि = व्यष्टि
सटा = हटा
सृजन = नाश
स्तुति = निंदा
स्याह = सफेद
स्वप्न = जागरण
स्वामी = दास
हमदर्द = बेदर्द
ह्रास = वृद्धि
दृत = अदृत

वाक्यांश के लिए एक शब्द

जब भाषा में विचारों या भावों को अत्यन्त संक्षेप में और सटीक शब्दों में प्रस्तुत किया जाता है। तब कथन का समास बद्ध और गहरा प्रभाव पड़ता है। इस स्थिति में हमें अनेक शब्दों के स्थान पर एक शब्द का प्रयोग करना पड़ता है। यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

जो अंडे से जन्मा हो = अंडज
राजभवन के भीतर महिलाओं का निवास = अन्तःपुर
किसी देश के भीतर होने वाला या उससे सम्बन्ध रखने वाला = अन्तर्देशीय

जिसके पास कुछ भी न हो = अकिंचन

जो गिना न जा सके = अगणित/अनगिनत

जिसका ज्ञान इन्द्रियों द्वारा न हो = अगोचर

जो चिन्तन करने योग्य न हो = अचिन्त्य

जिसका कभी जन्म न हो = अजन्मा

जिसे जीता न जा सके = अजेय

बढ़ा-चढ़ाकर कही गयी बात = अतिशयोक्ति

एक के बिना किसी दूसरे से सम्बन्ध न होना = अनन्य/अद्वितीय

जो वचन या वाणी द्वारा कहा न जा सके = अनिर्वचनीय

जो अनुकरण करने योग्य हो = अनुकरणीय

जिसका जन्म पीछे/बाद में हुआ हो = अनुज

जिस पर अभियोग लगाया गया हो = अभियुक्त

जिसे भेदा या तोड़ा न जा सके = अभेद्य

किसी वस्तु को आधुनिक रूप देने की क्रिया = आधुनिकीकरण

ईश्वर और आत्मा से सम्बन्ध रखने वाला = आध्यात्मिक

दूसरों की उन्नति देखकर जलने वाला = ईर्ष्यालु

ऊपर की ओर उछाला या फेंका गया = उत्क्षिप्त

अपनी विवाहित पत्नी से उत्पन्न (पुत्र) = औरस

अपने क्रम से आया हुआ = क्रमागत

गंगा से सम्बन्धित या गंगा से उत्पन्न = गांगेय

चिरकाल तक जीवित रहने वाला = चिरंजीवी

दूसरों के छिद्र/दोष खोजने वाला = छिद्रन्वेषी

जैसा पहले था वैसा ही = यथापूर्व

वसंत पंचमी के दिन मनाया जाने वाला = वसंतोत्सव

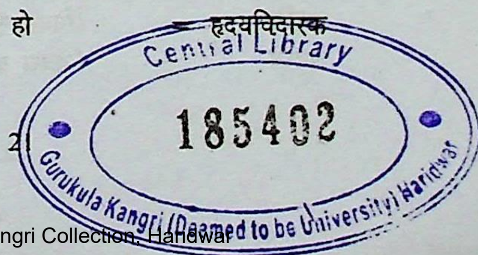
जो व्यर्थ की बहुत बातें करता है = वाचाल

भले-बुरे की पहचान करने का ज्ञान = विवेक

किसी काम में दूसरे से आगे बढ़ जाने की इच्छा = स्पर्द्धा

जो किसी के अधीन या पराधीन न हो = स्वावलंबी

जिसे देख-सुनकर हृदय फटता हो = हृदयविदारक



श्रुतिसम भिन्नार्थक शब्द

जिन शब्दों का उच्चारण लगभग एक जैसा होता है और उनको सुनने से एक ही अर्थ का बोध होने लगता है किन्तु वास्तव में वे भिन्न-भिन्न अर्थ प्रदान करते हैं। ऐसे शब्दों को श्रुतिसम भिन्नार्थक शब्द कहा जाता है। इस तरह से शब्दों से भाषा की सूक्ष्मता और गम्भीर विविधता का अनुमान लगाया जा सकता है। हिन्दी भाषा में इस तरह के शब्दों की भरमार है। यहाँ कुछ प्रमुख शब्दों और उनके भिन्न-भिन्न अर्थ की तालिका उदाहरण के रूप में दी जा रही है–

अंचल – (किसी क्षेत्र का पार्श्व भाग)
आँचल – (कपड़े का छोर, पल्लू)
अंश – (हिस्सा)
अंस – (कंधा)
अगम – (जहाँ कोई न पहुँच सके)
आगम – (शास्त्र, धार्मिक ग्रन्थ)
अगला – (आगे का)
अर्गला – (रोकने वाली कील कुंडी)
अनल – (वायु, हवा)
अनिल – (आग)
अनुसार – (अनुरूप)
अनुस्वार – (स्वर का नासिक्य रूप)
अभेद – (भेद का अभाष, एकत्व)
अभेद्य – (जिसे तोड़ा न जा सके)
अमूल – (बिना जड़ वाला)
अमूल्य – (अनमोल)
अयुक्त – (बिना जुड़ा हुआ)
आयुक्त – (कमिश्नर)
अरबी – (अरब देश का)
अरवी – (एक कंद/सब्जी का नाम)
अर्घ – (अंजुलिभर जल देना)
अर्घ्य – (बहुमूल्य)
अवधि – (नियत समय)
अवधी – (अवध की बोली)

इतर	–	(अन्य, दूसरा)
इत्र	–	(अतर, पुष्पसार, सैंट)
ऋत	–	(सत्य)
ऋतु	–	(मौसम)
करकट	–	(कचरा)
कर्कट	–	(केकड़ा)
कलि	–	(कलयुग)
कली	–	(अनखिला फूल)
कोड़ी	–	(बीस)
कोढ़ी	–	(कोढ़ से पीड़ित)
कोर	–	(सिरा, किनारा)
कौर	–	(निवाला, टुकड़ा)
निर्माण	–	(रचना)
निर्वाण	–	(मोक्ष)
प्रसाद	–	(देवी-देवता का योग, आशीर्वाद)
प्रासाद	–	(महल)
शंकर	–	(शिव)
संकर	–	(मिश्रित जाति का)
सम्मत	–	(सम्मति के अनुसार)
संवत्	–	(देशी वर्ष)
सूचि	–	(सुई)
सूची	–	(तालिका)
हरि	–	(विष्णु)
हरी	–	(हरे रंग की)
हल्	–	(व्यंजन अक्षर हलंत वाला)
हल	–	(समाधान)

समूह वाची शब्द

जब कोई शब्द एक ही वर्ग के व्यक्ति या वस्तु के समूह का बोध कराता है तो उस को समूह वाची शब्द कहा जाता है। ऐसे शब्द किसी भी भाषा की समास बद्ध संरचना और संगठित शक्ति की पहचान होते हैं। जैसे 'मेला' शब्द विशेष

प्रकार के समूह और उसकी गतिविधि का बोध करवाता है। उसी प्रकार 'ढेर' शब्द से भी किसी वस्तु को बहुतायत का अनुभव होता है। हिन्दी की शब्द-सम्पदा में ऐसे शब्दों की भी कमी नहीं है। नीचे कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं–

इकट्ठ, गट्ठर, गठरी, सेना, फौज, दल, गुच्छ, गुच्छा, सामग्री, सकल, समूह, पंचायत, रसद, सामान, कबीला, जमघट, काफिला, कारवाँ, दर्जन, शतक, सैंकड़ा, दस्ता दल।

ध्वन्यात्मक शब्द

हिन्दी की शब्द-सम्पदा में अनेक ऐसे शब्द भी पाए जाते हैं जिनके उच्चारण और वाचन और पाठन से किसी-न-किसी ध्वनि या आवाज का आभास होता है। ऐसे शब्दों को 'ध्वन्यात्मक शब्द' कहा जाता है। जैसे, 'टिक-टिक', 'टप-टप' से कानों में किसी क्रिया की ध्वनियाँ अनुभव होता है। ऐसे शब्दों का सम्बन्ध कान से होता है।

इस प्रकार के शब्द संज्ञा, विशेषण या क्रिया-विशेषण आदि कई श्रेणी में आते हैं। लोक बोली से लेकर साहित्यिक या औपचारिक वार्ता में भाषा की ध्वनि क्षमता का परिचय देने वाले इन शब्दों के कुछ उदाहरण नीचे लिखे जा रहे हैं–

खिच-खिच, सनसनाहट, दनदनाना, गुनगुनाना, झनझनाना, सुरसुराहट, फुसफुसाहट, टर्र-टर्र, चीं-चीं, रिरियाना, सनन-सनन झंकार, टंकार, मिमियाना, दहाड़, गड़गड़ाहट, गर्जन, खट-खट, पट-पट, फड़-फड़, फुंफकार, खर्राटा, खड़-खड़, खड़कना।

इस प्रकार यदि हम हिन्दी की शब्द-सम्पदा की समृद्धि पर ध्यान दें तो उपर्युक्त विवेचन के आधार पर इसकी अद्भुत क्षमता का आभास हो जाता है। अपने दैनिक जीवन में अन्य अनेक प्रकार का शब्द-संसार अपेक्षाकृत अधिक रोचक और ज्ञानवर्धक सिद्ध होता है।

शब्दों की वर्तनी और अशुद्धियाँ

'अशुद्धि' का अभिप्राय

भाषा का एकमात्र प्रयोजन और प्रकार्य सम्प्रेषण (Communication) है। सम्प्रेषण की सार्थकता वक्ता-श्रोता (लेखक-पाठक या सम्बोधक-सम्बोधित) के ऐसे संलाप में निहित है जिसे वे भली भाँति समझकर उसका तात्पर्य ग्रहण कर सकें। यह तभी सम्भव है जब भाषा का प्रयोग व्यवस्थाबद्ध, व्याकरणिक नियमानुकूल तथा परम्परा में बहुप्रचलित एवं प्रायः सर्वमान्य रूप में हो। भाषिक संरचना की अपनी एक व्यवस्था है। उस व्यवस्था के अनुकूल भाषिक प्रयोग ही संगत, साभिप्राय अथवा शुद्ध माने जा सकते हैं। **'बालक टूटना-का-रोना-का खिलौना'** आदि शब्दों के उच्चारण या इन्हें लिपिबद्ध कर देने मात्र से, इनके प्रयोग का प्रयोजन (तात्पर्य—अर्थसम्प्रेषण) पूर्ण नहीं हो पाएगा; क्योंकि इन भाषिक ध्वनियों अथवा उनसे संरचित शब्दों, में संरचनात्मक व्यवस्था का अभाव है। **'खिलौने टूट जाने के कारण बालक रोने लगा'** प्रयोग इसलिए स्वीकार्य (शुद्ध) है क्योंकि इसमें भाषिक संरचना-व्यवस्था का निर्वाह सही रूप में हुआ है। इन्हीं शब्दों के आधार पर की गई निम्नलिखित प्रकार की वाक्य संरचना में भी अशुद्धियाँ हैं—

(क) बालक टूटने के कारण खिलौना रोने लगा। (शब्द-सह प्रयोग की असंगति)

(ख) बालक टूटने लगा रोने कारण के खिलौना। (वाक्य-संरचना की व्याकरणिक व्यवस्था का क्रम-भंग)

(ग) खिलौना टूटने के कारन बालक रोने लग्गा। (वर्तनी-सम्बन्धी त्रुटियाँ)

अशुद्धियों के कारण

स्पष्ट है कि भाषा के अशुद्धिपरक असामान्य प्रयोग कई कारणों से होते हैं। यथा—

(1) भाषिक संरचना के नियमों की अवहेलना,
(2) व्याकरणिक व्यवस्था का भंग,
(3) अर्थबोध में असंगति,
(4) परम्परा में मान्य प्रयोगों से भिन्नता,
(5) उच्चारण अथवा लेखन में ध्वनियों के सही रूप की अप्रस्तुति।

इस आधार पर हम कह सकते हैं कि–

''भाषा की व्याकरणिक तथा संरचनात्मक व्यवस्था से हटकर, असंगत या अनुचित अर्थ प्रकट करने वाले असामान्य प्रयोग 'अशुद्ध' कहलाते हैं।''

वर्तनी-सम्बन्धी अशुद्धियाँ

'वर्तनी-सम्बन्धी अशुद्धियाँ' मूलतः संरचनात्मक (रूपात्मक) अशुद्धि का ही अंग हैं। किसी शब्द में प्रयुक्त ध्वनियों का गलत उच्चारण (शर्बत-सरबत, भाषण-भासन) अथवा किसी शब्द का उसके उच्चरित रूप से भिन्न रूप में लेखन 'वर्तनी-सम्बन्धी अशुद्धि' के अन्तर्गत माना जाएगा। जैसे–सकूल (स्कूल), सवासथ्य (स्वास्थ्य), महिना (महीना), किरपा (कृपा) इत्यादि।

'वर्तनी' का अभिप्राय है–अक्षर विन्यास। भाषा विभिन्न कथनों (प्रोक्तियों) का विशाल संग्रहालय है, वे कथन (प्रोक्तियाँ) असंख्य वाक्यों के संयोग से रूपायित हैं, वाक्य शब्दों से निर्मित हैं और शब्दों की संरचना अक्षर-विन्यास अर्थात् विभिन्न ध्वनियों वर्णों के समुचित संयोग पर निर्भर है। विभिन्न ध्वनियों के उपयुक्त संयोजन अथवा आवश्यकतानुरूप अर्थवाही अक्षर-विन्यास का ही अन्य पर्याय है–**'वर्तनी'**। **इस प्रकार वर्तनी भाषिक संरचना की रीढ़ है** जिसका स्वस्थ एवं सुदृढ़ (यथानुरूप व्यवस्थित और शुद्ध) होना भाषा की सम्यक् समृद्धि, बहुआयामी संचरणशीलता एवं मानक-प्रक्रिया के लिए आवश्यक है। अतः भाषा के प्रत्येक प्रयोक्ता के लिए वर्तनी-सम्बन्धी, विभिन्न प्रकार की सम्भावित अशुद्धियों के प्रति (विशेषतः भाषा के लिखित प्रयोग में) सावधानी अपेक्षित है।

हिन्दी का ध्वनि-समूह प्रमुखतः 'स्वर' एवं 'व्यंजन' वर्गों में विभक्त है। स्वर ध्वनियों को ('अ' को छोड़कर) व्यंजन-ध्वनियों से जोड़ने के लिए, उनके मात्रा-चिह्न निश्चित हैं। इनका उच्चारण के अनुरूप शुद्ध लिप्यांकन (लेखन) वांछनीय है। इसी प्रकार व्यंजनों में कुछ की उच्चरित ध्वनियाँ हिमालय और पश्चिम में आसाम–सभी प्रकृति के रमणीय स्थल हैं।

इस कथन में तथ्यों की असंगति अर्थ को खंडित कर देती है। इसी प्रकार–

'तुलसी-रचित अभिज्ञान-शाकुंतल की दो प्रतियाँ लेते आना।'

अथवा ''रामधारीसिंह दिनकर की कामायनी पढ़कर मन झूम उठा।''

ये दोनों तथ्यात्मक अशुद्धियों के उदाहरण हैं। (पहले वाक्य में 'तुलसी' के स्थान पर 'कालिदास', दूसरे में 'दिनकर' के स्थान पर 'प्रसाद' या 'कामायनी' के स्थान पर 'उर्वशी' होना चाहिए।)

तर्कपरक अशुद्धियाँ वहाँ होती हैं जहाँ किसी कथन में तर्क-संगति न होने के कारण अर्थ-सम्प्रेषण बाधित हो। जैसे–

'इतनी गर्मी पड़ी कि दीवार पिघल गई।' (**'दीवार का पिघलना' तर्कसंगत नहीं**)

अथवा

'भीषण सर्दी के कारण मैं पसीना-पसीना हो गया।'

तात्पर्यपरक अशुद्धियाँ अच्छे पढ़े-लिखे भाषा-प्रयोक्ताओं से भी हो जाती हैं। ऐसी अशुद्धियाँ प्रायः भाषा प्रयोगों में असावधानी के कारण होती हैं। भाषिक संरचना, व्याकरणिक नियमों एवं तथ्यों से अवगत होते हुए भी अनजाने में वाक्य-विन्यास कुछ ऐसा हो जाता है कि अभीष्ट तात्पर्य भली भाँति सम्प्रेषित नहीं हो पाता। उदाहरणतः

''तुम **अच्छी तरह** जानते थे कि वह **शायद** चला गया होगा, फिर भी मुझे उसके घर भेजने में शायद तुम नहीं चुके।''

यहाँ 'अच्छी तरह' से निश्चयात्मकता का बोध होता है किन्तु 'शायद' से 'अनिश्चयात्मकता' का। यही स्थिति 'चूके' और 'शायद' के प्रयोग में है। अतः यह **'तात्पर्यपरक'** अशुद्धि है। इसी प्रकार–

'हम हैं निम्नलिखित कमलानगर के निवासी'

इस कथन में 'निवासी' का विशेषण निम्नलिखित 'कमलानगर' से पहले प्रयुक्त होने के कारण **तात्पर्यपरक अशुद्धि** समझी जाएगी।

विशिष्ट प्रयोग या प्रयुक्ति-सम्बन्धी अशुद्धियाँ प्रायः तकनीकी या पारिभाषिक स्तर के कथनों में उन प्रयोक्ताओं द्वारा होने की सम्भावना रहती आपस में मिलती-जुलती हैं (श-ष-स, व-ब, न-ण, रि-ऋ, ह-ः (विसर्ग) आदि)। इनके सही प्रयोग का अभ्यास आवश्यक है। द्वित्य एवं संयुक्त व्यंजनों के लेखन में तो विशेष सजगता द्वारा ही सम्भावित अशुद्धियों से बचा जा सकता है।

यहाँ वर्तनी-सम्बन्धी कतिपय सम्भावित भूलों का निर्देश उपयुक्त होगा।

(1) स्वर एवं मात्रा-सम्बन्धी अशुद्धियाँ

हिन्दी स्वर-ध्वनियाँ उच्चारण में लगने वाले समय के आधार पर ह्रस्व और दीर्घ वर्गों में विभाजित हैं। इनके विपर्यय के कारण जो अशुद्धियाँ होती हैं उनसे कथित (या लिखित) भाषिक रूप का अर्थ ही बदल जाता है। जैसे–

अचार (खाद्य पदार्थ), आचार (आचरण, चाल-चलन)।

उन (वह का बहुवचनीकृत रूपान्तर), ऊन (भेड़ आदि के बालों से तैयार गर्म धागा)।

इस दृष्टि से '**आचार**-विचार में शुद्धता होनी चाहिए।' या 'ग्रामीण लोग आचार के साथ ही खाना खा लेते हैं।' प्रयोगों में वर्तनी-सम्बन्धी अशुद्धि के कारण अभीष्ट अर्थ-सिद्धि में व्याघात होगा। वर्तनी की अशुद्धि के कारण यही स्थिति 'मैंने ऊन का सारा ऋण चुकता कर दिया है।' या 'गर्मियों में ऊन के वस्त्र सस्ते हो जाते हैं' प्रयोग में होगी।

मात्रा-प्रयोग में ह्रस्व और दीर्घ स्वरों के विपर्यय के कारण विशेष रूप से बहुत अशुद्धियाँ सम्भावित हैं। 'दिन-दीन, सुत-सूत, मेल-मैल, शोक-शौक' आदि शब्दों के अर्थ सर्वदा भिन्न हैं। अतः 'चार **दीन** का मेहमान।' 'वह **दिन-हिन** व्यक्ति किसी का क्या बिगाड़ेगा?' 'गुजरात में **सुत** की कई मिलें हैं।' '**मैल**-जोल से रहने में ही **सूख** है।' 'मुझे अपने मित्र की मृत्यु का बहुत **शौक** है।' आदि वाक्य प्रयोक्ता के लिए बड़ी हास्यास्पद स्थिति उत्पन्न कर सकते हैं। इस प्रकार की अशुद्धियाँ बहुवचन-निर्माण के इस नियम की अवहेलना के कारण भी होती हैं कि **'एकवचन'** में प्रयुक्त दीर्घ 'ई' और 'ऊ' बहुवचन में ह्रस्व हो जाते हैं।' यथा–नदी-नदियों, भालू-भालुओं आदि। नदीयों, भालूओं, चाबीयाँ आदि प्रयोग 'अशुद्ध' हैं। इसी प्रकार, 'इक' प्रत्यय वाले शब्दों का पहला स्वर प्रायः दीर्घ हो जाता है–सामाजिक, स्वाभाविक, आर्थिक आदि। समाजिक, स्वभाविक, अर्थिक प्रयोग अशुद्ध होंगे।

कुछ अन्य उदाहरण इस प्रकार हैं–

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध	शुद्ध
परिक्षा	परीक्षा	अभीमान	अभिमान
दुसरा	दूसरा	दुध	दूध
स्त्रि	स्त्री	आँसु	आँसू
पत्नि	पत्नी	अश्रू	अश्रु
त्रुटी	त्रुटि	मुल्य	मूल्य

मूर्ती	मूर्ति	अनूसार	अनुसार
मुक्ती	मुक्ति	लड़ाकु	लड़ाकू
कोशीश	कोशिश	मालुम	मालूम
मैथिलिशरण	मैथिलीशरण	झाड़ु	झाड़ू
कृपालू	कृपालु	झगड़ालु	झगड़ालू
ईर्ष्यालू	ईर्ष्यालु		

'ऋ' (हिन्दी में इस ध्वनि-चिह्न की गणना स्वरों में की जाती है) का मात्रा-चिह्न (ृ) है। यथा—कृपा, वृक्ष, तृण आदि। इसका उच्चारण 'रि' जैसा होने के कारण लिखित रूप में भी क्रिपा, व्रिक्ष, त्रिष्णा आदि रूप दिखाई देते हैं जो 'अशुद्ध' हैं।

इसी प्रकार विसर्ग (:) का उच्चारण हलन्त 'ह' जैसा है जिसके अनुकरण पर लिखित भाषा में प्रातह्, अन्तह् करण, स्वतह् आदि प्रयोग अशुद्ध होंगे—प्रातः, अन्तःकरण, स्वतः शुद्ध रूप हैं। इसी प्रकार अन्य उदाहरण हैं—

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध	शुद्ध
द्रष्टि	दृष्टि	भृष्ट	भ्रष्ट
स्रष्टि	सृष्टि	अनुगृह	अनुग्रह
प्रष्ठ	पृष्ठ	संगृह	संग्रह
क्रत्रिम	कृत्रिम	अनुग्रहीत	अनुगृहीत
घ्रणा	घृणा	संग्रहीत	संगृहीत
बृजभूषण	भ्रजभूषण		

ए-ऐ, ओ-औ की मात्राओं के प्रयोग में सम्भावित अशुद्धियों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध	शुद्ध
एव	ऐव	ओषधि	औषधि
चाहै	चाहे	कटोती	कटौती
कसेला	कसैला	(किस) और	ओर
नैपथ्य	नेपथ्य	यह (ओर) वह	और
मैल (जोल)	मेलजोल	ओसान	औसान
मेल (धोना)	मैल धोना	अक्षोहिनी	अक्षौहिणी
टैलीफोन	टेलीफोन	जौंक	जोंक
ऐनक	ऐनक	हौंठ	होंठ

अनुस्वार (ं) और अनुनासिक (ँ) के प्रयोग में कई प्रकार की अशुद्धियाँ हो जाती हैं। जैसे–

(1) दोनों का विपर्यय–कँठ (शुद्ध-कंठ), आन्त (आँत) आदि।

(2) एक सर्वमान्य प्रचलित नियम यह है कि व्यंजन-वर्गों के पंचम अक्षर ङ्, ञ्, ण्, न्, म् के स्थान पर अनुस्वार (ं) का प्रयोग होता है, अनुनासिक (ँ) का नहीं–पञ्जा-पंजा, कण्ठ-कंठ, सन्त-संत, अङ्क-अंक, सम्वाद-संवाद।

(3) एक अन्य प्रचलित नियम यह है कि प्रायः ह्रस्व वर्णों पर अनुस्वार (ं) और दीर्घ पर अनुनासिक (ँ) का प्रयोग होता है–अंध-आँधी, कंस-खाँसी, मंत्र-माँस इत्यादि।

इस सन्दर्भ में एक अन्य बहुसम्भावित अशुद्धि भी उल्लेखनीय है। भाषा के लिखित प्रयोग में भूलवश अनुस्वार का चिह्न जिस अक्षर पर लगना चाहिए उसके पूर्व या पश्चात् के अक्षर पर लग जाता है। जैसे–सतांन (शुद्ध–संतान), आंनद (शुद्ध–आनंद) इत्यादि।

इसी प्रकार की अनेक अन्य अशुद्धियाँ सम्भव हैं। यथा–

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध	शुद्ध
गगां	गंगा	उन्होने	उन्होंने
ससांर	संसार	जिन्होने	जिन्होंने
आयेगें	आयेंगे	नही	नहीं
करेगें	करेंगे	मै	मैं
बोलेगे	बोलेंगे	कात	कांत
हँस (पक्षी)	हंस	भ्रातिं	भ्रांति
हंसी	हँसी	रांगा	राँगा
मांजना	माँजना	यहां	यहाँ
गँध	गंध	जाएं	जाएँ
ओंधा	औंधा		

(2) व्यंजन-सम्बन्धी अशुद्धियाँ

'व्यंजन-सम्बन्धी अशुद्धियाँ' अधिकांशतः अक्षर-विपर्यय के कारण होती हैं। मिलती-जुलती अथवा समान प्रतीत होने वाली ध्वनि के सूचक अक्षरों के प्रयोग में असावधानी-वश विपर्यय हो जाता है, जो 'अशुद्धि' बनकर अर्थ-संचार को भी क्षति पहुँचा सकता है। उदाहरणः क्ष-छ, क्ष-ज्ञ, ड-ड़, ढ-ढ़, ड़-ढ़, न-ण, व-ब आदि

अक्षरों में परस्पर विपर्यय की आशंका है। परिणामतः प्रतीछा, रिक्षा, रज्ञा, आक्षा, लडना, ड़ाकू, ढ़ाल, पढाई, चड़ाई, कारन, आसण, वादल, बियोग आदि 'अशुद्ध' प्रयोग देखे जाते हैं, जिनके 'शुद्ध' रूप हैं—प्रतीक्षा, रिक्शा, रक्षा, आज्ञा, लड़ना, डाकू, ढाल, पढ़ाई, चढ़ाई, कारण, आसन, बादल, वियोग आदि। इसी प्रकार श-ष का विपर्यय एक आम बात है—दृष्य, मनुश्य, अभिलाशा, निश्फल, भाशण आदि। (शुद्ध रूप—दृश्य, मनुष्य, अभिलाषा, निष्फल, भाषण।)

अल्पप्राण और महाप्राण व्यंजन-ध्वनियों (विशेषतः ट-ठ) का विपर्यय भी अशुद्ध का कारण है। जैसे—अभीष्ठ, पृष्ट, रुष्ठ, कनिष्ट, क्लिष्ठ आदि। (शुद्ध—अभीष्ट, पृष्ठ, रुष्ट, कनिष्ठ, क्लिष्ट)।

हिन्दी की व्यंजन-ध्वनियों में रेफ (र) के प्रयोग में पर्याप्त सावधानी अपेक्षित है, विशेषतया जब इसका प्रयोग अन्य व्यंजन-ध्वनियों के साथ संयुक्त रूप से हो। 'क्रम' और 'कर्म' के अर्थ में पर्याप्त अन्तर है। 'क्रम' की रूप-रचना इस प्रकार है—क्+र्+अ+म्+अ (अर्थात क् हलन्त और र पूर्णाक्षर है)। दूसरी ओर 'कर्म' में 'र्' हलन्त है। सामान्य नियम यह है कि 'र' से पूर्व यदि हलन्त अक्षर हो तो र उस अक्षर के नीचे (प्र, क्र, द्र) लगता है और यदि र् हलन्त हो तो उसका चिह्न आगामी अक्षर के ऊपर (ं) के रूप में प्रयुक्त होता है, (धर्म, दर्प, सर्व)। परकाश-पर्काश, करमसंख्या-कर्मसंख्या, कदर-कर्द आदि के स्थान पर क्रमशः प्रकाश, क्रमसंख्या, कद्र शुद्ध वर्तनी-रूप हैं।

हलन्त र् के प्रयोग में एक अन्य अशुद्धि प्रायः यह हो जाती है कि इसका अंकन उपयुक्त अक्षर के ऊपर न होकर, पूर्व या परवर्ती अक्षर पर कर दिया जाता है—अर्निवचनीय, सवार्त्मा, शबर्त, दुर्ष्कम आदि। (शुद्ध रूप—अनिर्वचनीय, सर्वात्मा, शर्बत, दुष्कर्म)।

व्यंजन-सम्बन्धी सर्वाधिक सम्भावित अशुद्धियाँ द्वित्व और संयुक्त वर्णों में दिखाई देती हैं। 'द्द' के स्थान पर 'द्व' या 'द्ध'; हलन्त के स्थान पर पूर्णाक्षर और पूर्णाक्षर के स्थान पर हलन्त व्यंजन का प्रयोग वर्तनी को अशुद्ध बना देता है। यथा—द्विवेदी, विद्वा, उद्वार, पुसतक, पर्मातमा, परसाद, पर्साद, आन्नद, अतिआचार, प्रशन, तादातम्य, विआखा आदि अशुद्धियाँ इसी प्रकार की हैं। (शुद्ध रूप—द्विवेदी विदा, विद्या, उद्धार, पुस्तक, परमात्मा, प्रसाद, आनन्द, अत्याचार, प्रश्न, तादात्म्य, व्याख्या।)

वर्तनी-सम्बन्धी अशुद्धियों का एक अन्य प्रमुख क्षेत्र सन्धि-युक्त वर्ण है। हिन्दी में स्वर, व्यंजन एवं विसर्ग-सम्बन्धी संधियों के विभिन्न नियम निर्धारित

और प्रचलित हैं, उनकी अवहेलना अनेक अशुद्धियों का कारण बन जाती है। ये अशुद्धियाँ स्वर-संधि-युक्त शब्दों में अधिक दिखाई देती हैं। जैसे—अत्याधिक (शुद्ध—अत्यधिक)। 'अति+अधिक' में इ को य हो जाने के बाद 'अधिक' का 'अ' उसी (य्) में मिलकर 'य' बन जाता है। इस अशुद्धि का कारण 'अत्याचार' (अति+आचार) का अनुकरण है। यहाँ 'आचार' में दीर्घ 'आ' है, इसलिए 'अति' 'इ' को 'य्' हुआ तथा 'आचार' के 'आ' की दीर्घ मात्रा (ा) उसमें मिलने से 'अत्याचार' बन गया। इसी प्रकार 'संधि' से बनने वाले कुछ अन्य शब्दों का ध्यान रहना चाहिए—

अशुद्ध		शुद्ध
उद्वार	(उत्+हार)	उद्धार
उदघाटन	(उत्+घाटन)	उद्घाटन
भगवतगीता	(भगवत्+गीता)	भगवद्गीता
अभिशेक	(अभि+सेक)	अभिषेक
निश्पाप	(निः+पाप)	निष्पाप
निश्कर्म	(निः+कर्म)	निष्कर्म
निष्चल	(निः+चल)	निश्चल
उपरियुक्त, उपरोक्त	(उपरि+उक्त)	उपर्युक्त
उज्जवल	(उत्+ज्वल)	उज्ज्वल
कवेन्द्र	(कवि+इन्द्र)	कवीन्द्र
गणीश	(गण+ईश)	गणेश
नाइक	(नै+अक)	नायक
नाइका	(नै+इका)	नायिका
सच्चदानंद	(सत्+चित्+आनंद)	सच्चिदानंद
सन्सार	(सम्+सार)	संसार
नमश्कार	(नमः+कार)	नमस्कार
पुनश्जन्म	(पुनः+जन्म)	पुनर्जन्म

इस प्रकार, भाषा-लेखन में कई स्वरों की अशुद्धियाँ सम्भव हैं जिनसे बचना आवश्यक है।

'अशुद्धि' के अन्य प्रकार

असामान्य भाषिक प्रयोग की अशुद्धियाँ मूलतः दो प्रकार की हो सकती हैं—अव्यवस्थित प्रयोग पर आधारित अशुद्धियाँ, (2) व्यवस्थापरक अशुद्धियाँ।

(1) **अव्यवस्थित प्रयोग पर आधारित अशुद्धियाँ** वे हैं जिनमें भाषिक व्यवस्था के क्रम एवं नियम आदि की अवहेलना दिखाई देती है। यथा–'हम तब तक उधर नहीं जाएगा जब तक मेरे को मेरी रुपया वापस नहीं मिल जाती।' इस वाक्य में वचन और लिंग-सम्बन्धी व्याकरणिक व्यवस्था की अवहेलना हुई है। कर्ता (हम) बहुवचन है किन्तु क्रिया (जाएगा) **एक वचन;** इसी प्रकार रुपया (विशेष्य) पुल्लिंग है किन्तु इसका विशेषण 'मेरी' और इसकी क्रिया 'मिल जाती' स्त्रीलिंग है। 'मेरे को' भी असंगत प्रयोग है। मानक हिन्दी की व्याकरणिक व्यवस्था के अनुसार 'मैं' सर्वनाम का कर्मकारक एकवचन में 'मुझे' रूप मान्य है।

(2) **व्यवस्थाबद्ध अशुद्धियाँ** वे हैं जिनमें व्याकरणिक व्यवस्था का ठीक-ठीक निर्वाह होने पर भी अन्य किसी कारण से अर्थबोध में अनौचित्य असंगति या बाधा प्रतीत होती है। यथा–

(क) 'दूध का एक गर्म प्याला ले आओ।'

(ख) 'इस उपन्यास की कथावस्तु इतनी कठोर है कि उसे पचाना बहुत सरल है।'

व्याकरणिक व्यवस्थाबद्ध की दृष्टि से इन वाक्यों में कोई असंगति दिखाई नहीं देती। कर्ता-कर्म-क्रिया का क्रम नहीं है। लिंग-वचन-कारक का प्रयोग तथा वाक्य-विन्यास भी नियमानुकूल है; फिर भी अर्थ-बोध (तात्पर्य, सम्प्रेषण, प्रयोजन) स्पष्ट नहीं होता। प्रथम वाक्य में गर्म 'विशेषण' प्याले की अपेक्षा 'दूध' के साथ प्रयुक्त होना चाहिए (गर्म दूध का एक प्याला लाओ)। दूसरे वाक्य में प्रयुक्तिपरक अशुद्धि है। 'कठोर' कोई धातु या पदार्थ (किसी का हृदय भी) हो सकता है, 'कथावस्तु' जटिल, अस्वाभाविक, अरोचक आदि हो सकती है। उसे (कथावस्तु को) 'पचाना' प्रयोग भी असंगत है। 'समझना' उचित होता। फिर, 'कठोर' और 'सरल' विरोधी प्रयोग हैं, जिन्हें एक ही वस्तु (कथा) से जोड़ना असंगत है। वाक्य यों होना चाहिए–'इस उपन्यास की कथावस्तु इतनी अस्वाभाविक है कि उसे समझ पाना बहुत कठिन है।' अथवा 'इस उपन्यास की कथावस्तु इतनी स्वाभाविक (रोचक) है कि उसे समझना बहुत सरल है।'

स्पष्ट है कि यहाँ वाक्य-संरचना व्यवस्थित होते हुए भी अर्थ और प्रयोग के स्तर पर भाषा के असामान्य प्रयोग 'अशुद्धियों' के अन्तर्गत आ जाते हैं।

व्यवस्थाबद्ध अशुद्धियों के प्रकार

भाषा जहाँ एक व्यवस्था है, वहीं उसका स्वरूप संघटनात्मक भी है। उसकी यह

संघटना उसकी विभिन्न इकाइयों के संरचनात्मक गुच्छ के रूप में साकार होती है। भाषा ध्वनि-प्रतीकों की व्यवस्था है; अतः संरचना के स्तर पर उसकी लघुतम इकाई ध्वनि (लिपि में वर्ण) है। ये ध्वनियाँ जब शब्द-संरचना में प्रवृत्त होती हैं, तभी भाषा अर्थवाहिनी बनती है। इसका अभिप्राय यह है कि अर्थ के स्तर पर भाषा की मूल इकाई शब्द हो सकता है, मात्र ध्वनि नहीं। शब्द अपने-आप में किसी वस्तुमात्र का संकेत या अर्थ-बोध करा सकता है, उसमें हमारे मन्तव्य (प्रयोजन, कथ्य) को पूर्णतः सम्प्रेषित करने की क्षमता नहीं। यह क्षमता विभिन्न सार्थक शब्दों के व्यवस्थित समूह के रूप में संरचित वाक्य में ही सम्भव है। कई बार तो एक ही वाक्य द्वारा हमारे तात्पर्य का सम्प्रेषण हो जाता है, कई बार एक से अधिक वाक्य हमारे कथ्य को श्रोता, पाठक आदि तक सम्प्रेषित करते हैं। ध्वनि से लेकर वाक्य या वाक्य-समूह (कथन या प्रोक्ति) तक की यह भाषा-संघटना उसकी संरचना है। इनमें से किसी भी स्तर पर दिखाई देने वाली अशुद्धि 'संरचनात्मक-अशुद्धि' कहलाएगी। अर्थात ध्वनियों (वाक्-प्रतीकों या वर्णों), ध्वनि-गुच्छों (शब्दों) अथवा शब्द-समूहों अर्थात् वाक्यों की संरचनात्मक व्यवस्था में यदि कोई ऐसी शिथिलता, त्रुटि या असंगति है जो सम्प्रेषण में बाधक है तो वह 'संरचनात्मक अशुद्धि' होगी। इस प्रकार संरचना की दृष्टि से तीन प्रकार की अशुद्धियाँ हो सकती हैं–

(1) ध्वनि-संरचना सम्बन्धी अशुद्धियाँ;
(2) शब्दगत (शब्द-संरचना या रूप-रचना सम्बन्धी) अशुद्धियाँ;
(3) वाक्य-संरचना सम्बन्धी अशुद्धियाँ।

अर्थपरक अशुद्धियाँ

कई बार यह संरचना सुव्यवस्थित होने पर भी अर्थबोध में व्यक्तिक्रम या व्यवधान प्रतीत होता है। 'कमल' छह ध्वनियों की संरचना से निर्मित शब्द है। आकाश, उद्यान, सरोवर भी इसी प्रकार के सार्थक शब्द हैं। इनसे कई प्रकार के वाक्यों की संरचना सम्भव है।

(1) उसने आकाश में कमल देखे।
(2) आकाश में एक उद्यान था।
(3) सरोवर और उद्यान मिलकर आकाश बनता है।

इन तीनों वाक्यों का संरचनात्मक ढाँचा तो सही है, क्योंकि भाषिक व्यवस्था में कोई गड़बड़ नहीं; किन्तु अर्थ-स्तर पर ये प्रयोग अशुद्ध हैं। इसका तात्पर्य यह है कि व्यवस्थाबद्ध अशुद्धियों में दूसरा प्रकार 'अर्थपरक अशुद्धियों' का है।

संरचना अथवा अर्थ-स्तर पर होने वाली अशुद्धियों के दो अन्य भिन्न-भिन्न सन्दर्भ यहाँ उल्लेखनीय हैं—एक उच्चरित अर्थात् मौखिक और दूसरा, लिखित अर्थात् लिपिबद्ध। ऊपर दिया गया कथन सुधार कर यदि यों कर दिया जाए—'उसने सरोवर में कमल देखे। मानो कमलों का पूरा उद्यान था। साथ ही सरोवर में पड़ता हुआ आकाश का प्रतिबिम्ब उस दृश्य को और भी मनोहर बना रहा था।' तो अर्थपरक अशुद्धि दूर हो जाएगी। किन्तु इसकी शुद्धता केवल मौखिक स्तर तक ही सीमित होगी। जब इसी कथन को लिपिबद्ध करते समय कोई इस प्रकार लिख दे—'उस्ने स्रोवर में कमल देखे, मानो कमलों का पूरा उदिआन था साथ ही स्रोवर में पड़ता हुआ अकाश का पर्तिबिम्ब उस द्रष्य को ओर भि मनौहर बना रिहा था' तो मौखिक रूप में अर्थ-स्तर पर यह कथन शुद्ध प्रतीत होते हुए भी, लिखित रूप लेते ही 'अशुद्ध' माना जाएगा। इस प्रकार की—ध्वनि-चिह्नों (वर्णों) को उच्चारण अनुसार सही न लिखने की—अशुद्धि 'वर्तनी-सम्बन्धी अशुद्धि' कहलाएगी।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि व्यवस्थाबद्ध अशुद्धियाँ मुख्यतः तीन प्रकार की हैं—

(क) संरचनात्मक अशुद्धियाँ;

(ख) अर्थपरक अशुद्धियाँ;

(ग) वर्तनी-सम्बन्धी अशुद्धियाँ।

(क) संरचनात्मक अशुद्धियाँ—पीछे स्पष्ट किया जा चुका है कि **'भाषिक संरचना की व्यवस्था भंग करने वाले असामान्य प्रयोग संरचनात्मक अशुद्धियों के अन्तर्गत आते हैं।'** संरचना के चार प्रमुख स्तर हैं—ध्वनि (वर्ण), शब्द, पद और वाक्य। इनमें से किसी भी स्तर पर यदि संरचना की व्यवस्था की अवहेलना की जाती है तो वह संरचनात्मक अशुद्धि होगी।

ध्वनिगत अशुद्धियाँ—ध्वनि के स्तर पर होने वाली अधिकांश अशुद्धियाँ भाषा के लिखित (लिपिबद्ध) रूप में दिखाई देती है (जिनका अलग से विशद विवेचन आगे 'वर्तनी-सम्बन्धी अशुद्धियाँ' शीर्षक के अन्तर्गत किया गया है) क्योंकि मुख से सही उच्चारण करते हुए भी लिखते समय वर्णों की आकृति के अन्तर (क्ष को ज्ञ, ज्ञ को क्ष), ह्रस्व-दीर्घ स्वरों मात्राओं के विपर्यय (कीसि (किसी), मैरा (मेरा), सून्दर (सुन्दर), आदि) तथा द्वित्य (द्द-द्ध-द्ध) या संयुक्त अक्षरों के लिप्यंकन में भूलें हो जाती हैं। (विस्तार के लिए देखिए—'वर्तनी-सम्बन्धी अशुद्धियाँ')। फिर भी कई बार मौखिक प्रयोग में भी दोषपूर्ण ध्वनि-संरचना अथवा उच्चारण सुनने में आता है। जैसे—स्कूल, स्टेशन, स्त्री को इस्कूल, इस्टेशन, इस्त्री बोलना, 'श'

का 'स'; 'श' का 'ष'; 'व-ब'; ब-व अथवा हलन्त अक्षर का सस्वर उच्चारण ('बल्कि' को 'बलिक', 'तादात्म्य' को 'तादातम्य' बोलना आदि)।

शब्दगत अशुद्धियाँ—शब्द और पद के स्तर पर संरचनात्मक अशुद्धियाँ प्रायः अधिक देखी जाती हैं। हिन्दी में अधिकांशतः शब्द और पद-रचना विभिन्न उपसर्गों के संयोग से होती हैं। कई बार मूल शब्द (प्रकृति या धातु) के अन्य शब्दों के साथ सहप्रयोग के समय, उसमें कुछ परिवर्तन हो जाता है। जैसे—

उपसर्ग से—अ—असमर्थ,

प्रत्यय से—समाज—इक—सामाजिक,

परसर्ग—मे—मुझे, मैंने, मुझसे।

मूल शब्द (प्रकृति) में परिवर्तन—लड़का, लड़के (ने), लड़कों (ने, को, से)।

धातु-रूप में परिवर्तन—खेल-खेलना, खेलता-खेलते-खेलती, खेला, खेली-खेले-खेलूँ, खेलेगा आदि।

जब कभी भाषा-प्रयोग में इन संरचनात्मक रूपों और इनके लिए निर्धारित नियमों की अवहेलना होगी, उसका परिणाम होगा—'संरचनात्मक अशुद्धि'। उदाहरणतः—

(1) माँ जी ने चाकू से फल काटता हैं। (कर्ता के अनुसार क्रिया का लिंग-वचन न होने से अशुद्धि)।

(2) माँ जी चाकू से फल काटी। (सकर्मक क्रिया के भूतकालिक होने के कारण कर्ता के साथ 'ने' परसर्ग का प्रयोग नहीं हुआ। 'काटी' भी अशुद्ध है, क्योंकि सकर्मक भूतकालिक क्रिया का लिंग कर्म के अनुसार होता है।)

(3) यह धावक तेज दौड़ते हैं। ('दोड़ते' अशुद्ध)

(4) भारत में कितने नदियें हैं? ('कितने', 'नदियें' अशुद्ध)

(5) यह क्लर्क तो बड़ा झगड़ावान है। (झगड़ा में 'वान' प्रत्यय अशुद्ध)

(6) तुम बहुत ही चुस्तालु, चुस्तीमान हो। (दोनों प्रत्ययों का असंगत प्रयोग)

(7) वह लड़का ने तुम्हारे को कितना सहायता किया? (भूतकालिक सकर्मक क्रिया के कर्त्ता का सर्वनाम 'वह' अशुद्ध है, 'उस' शुद्ध। 'ने' परसर्ग के कारण 'लड़के' होना चाहिए। 'तुम' का कर्मकारक एकवचन में 'तुम्हें' रूप बनता है। विशेषण 'कितना' का लिंग विशेष्य 'सहायता' के अनुसार न होने से अशुद्धि है। इसी प्रकार भूतकालिक सकर्मक क्रिया कर्म के अनुसार न होने के कारण 'क्रिया' अशुद्ध है, 'की' शुद्ध।)

स्पष्ट है कि इन उदाहरणों में 'शब्द' या 'पद' के स्तर की संरचनात्मक अशुद्धियाँ हैं।

शब्दगत अशुद्धियों के विभिन्न उदाहरण
[शुद्ध रूप कोष्ठकों में हैं।]

1. जहाँ तक दृष्टि जाती थी, **सब** बर्फ ही बर्फ दिखाई देती थी।
   (**सब** के स्थान पर **वहाँ तक** होना चाहिए। अव्यय-सम्बन्धी अशुद्धि है।)
2. आपको वह इस कारण नहीं मिला **ताकि** आप समय पर नहीं पहुँचे।
   (ताकि की जगह **क्योंकि** शुद्ध। योजक अव्यय का गलत प्रयोग।)
3. जो अपनी योग्यता **के** द्वारा कार्य करते हैं, वे अवश्य सफल होते हैं।
   (**'के द्वारा'** अशुद्ध प्रयोग है। **'योग्यता के अनुसार'** शुद्ध है। परसर्ग-सम्बन्धी अशुद्धि है।)
4. हम तुम्हारी बात मान लें **जबकि** तुम हठ छोड़ दो।
   (शुद्ध—**यदि** तुम हठ छोड़ दो तो हम तुम्हारी बात मान लें।)
5. अरबी **घोड़ें** और घोड़ियों का मूल्य अधिक है।
   (अरबी **घोड़ों** और घोड़ियों का मूल अधिक है। बहुवचन के विकारी रूप की अशुद्धि।)
6. **चार-दो** मिनट रुको, फिर चलेंगे।
   (**दो-चार** मिनट रुको, फिर चलेंगे। शब्द-सहप्रयोग की अशुद्धि।)
7. अतिथि का **सत्कार-आदर** तो करना चाहिए।
   (**आदर-सत्कार** शुद्ध)
8. साहित्य से ही किसी समाज के **रहन-सहन, पान-खान, विचार-आचार** का पता चलता है।
   (**रहन-सहन, खान-पान,** आचार-विचार शुद्ध।)
9. ज़रा-सी बात पर **सफ़ेद पीला** होना ठीक नहीं।
   (**लाल-पीला** शुद्ध)
10. बन्दर ने मेरी पुस्तक **चीर दी।**
    (पुस्तक **फाड़ दी** शुद्ध है।)
11. काश्मीर की **'सौन्दर्यता'** देखने योग्य है।
    (**'सौन्दर्यता'** के स्थान पर **'सुन्दरता'** होना चाहिए। 'सौन्दर्य' स्वयं भाववाचक संज्ञा है। **'सुन्दर'** विशेषण में 'ता' प्रत्यय से 'सुन्दरता' शुद्ध है।)
12. आपने **आपका** परिचय नहीं दिया।
    (**'अपना'** परिचय शुद्ध।)

13. तुम **तुम्हारा** काम करो, मैं **मेरा** काम करता हूँ।
    (तुम **अपना** काम करो, मैं **अपना** काम करता हूँ।)
14. बच्चे खिलौने पाकर **खुशी** होती हैं।
    (**'खुश'** विशेषण का प्रयोग होना चाहिए। **'खुशी'** भाववाची संज्ञा का प्रयोग यहाँ अशुद्ध है। **'खुशी' अनुभव करते हैं,** प्रयोग ठीक है।)
15. इस काम में अनेक **क्लर्क** लगे हुए हैं।
    (अनेक **क्लर्क** लगे हुए हैं।)
16. उसकी लिखावट में **अनेकों** त्रुटियाँ हैं।
    (**'अनेक'** शुद्ध है। यह स्वयं बहुवचन है, अतः 'ों' लगाकर बहुवचन बनाना अशुद्ध है।)
17. बच्चे की बात सुनकर **मैं विस्मय** हुआ।
    (**'विस्मित हुआ'** शुद्ध है।)
18. इस बार **इतनी** वर्षा........**'जैसी'** पहले कभी नहीं हुई।
    (इस बार **'ऐसी'** वर्षा...शुद्ध है या **इतनी वर्षा** के बाद **'जितनी'** पहले कभी नहीं...शुद्ध होगा।)
19. राम के **साथों-साथ** लक्ष्मण भी वन को गया।
    (राम के **'साथ-साथ'**.......शुद्ध है।)
20. **तुमके** पास मेरी पुस्तक है।
    (**'तुम्हारे'** पास...शुद्ध।)
21. **कोई भी** आदमी को मत बताना।
    (**किसी भी** आदमी को मत बताना।)
22. यहाँ **'नहीं'** बैठो।
    (यहाँ **'मत'** बैठो।)
23. **गुण-अगुण** तो सब में होते हैं।
    (**गुण-अवगुण**...शुद्ध है। 'अपसर्ग'-प्रयोग सम्बन्धी अशुद्धि है।)
24. आप किस दल का **परिचार** कर रहे हैं।
    (**'प्रचार'** शुद्ध हैं।)
25. वह बहुत भागा, पर **अनसफल** रहा।
    (**'अनसफल'** के स्थान पर **'असफल'** होना चाहिए।)
26. सपूत और **दुपूत** कर्मों से पहचाने जाते हैं।
    (**'कपूत'** शुद्ध है, **'दुपूत'** अशुद्ध।)

27. मेरा सारा प्रयत्न **दुष्फल** रहा।
    (**'निष्फल'** शुद्ध है।)
28. वह हमारे विरोध का **कुस्साहस** नहीं कर सकता।
    (**'कुस्साहस'** अशुद्ध प्रयोग है, **'दुस्साहस'** शुद्ध है।)
29. वह अच्छा घुमक्कड़ भी है और अच्छा **खिलक्कड़** तथा **पढ़ाकर** भी।
    (वह अच्छा **घुमक्कड़** भी है और अच्छा **खिलाड़ी** तथा **पढ़ाकू** भी।)
30. आज़ आपने **साहसता** दिखाई।
    (**साहस** दिखाया।)
31. वह शर्मीला तो है, **झगड़ीला** नहीं।
    (**झगड़ालू** नहीं।)
32. **चमकालू** काग़ज़ पर कलम नहीं चलती।
    (**चमकीले** काग़ज़ पर।)
33. वह उत्साही, साहसी और **कर्मठी** है।
    (**कर्मठ** है।)
34. **जातीक** और **राष्ट्रीय** हित वैयक्तिक हित से ऊँचा है।
    (**जातीय** और **राष्ट्रीय** हित...।)
35. **छोटें मन्त्री बड़े मन्त्री** के निर्देश पर काम करते हैं।
    (**उपमन्त्री मुख्यमन्त्री** (या **प्रधानमन्त्री**) के निर्देश पर...।)
36. **अर्थ के विना** बातें करने का कोई लाभ नहीं।
    (**निरर्थक** बातें करने का कोई लाभ नहीं।)
37. यद्यपि अन्न का उत्पादन बढ़ रहा है **किन्तु** किसान दुःखी हैं।
    (**यद्यपि....तथापि** किसान दुःखी है।)
38. आप अनाज के बदले घी दे दीजिए **तथा** रुपए अदा कर दीजिए।
    (आप......**अथवा**.....।)
39. सैनिकों ने **गोलियाँ** छोड़ी और **राकेटे** चलाई।
    (सैनिकों ने **गोलियाँ** चलाईं और **राकेट** छोड़े।)

अपठित

अपठित का अभिप्राय है—जो कभी पढ़ा नहीं गया। जो कभी पाठ्यक्रम में निर्धारित नहीं था। जिसे अचानक हमें पढ़ने के लिए दिया गया हो और उससे सम्बद्ध विभिन्न प्रश्नों के उत्तर देने के लिए कहा गया हो। इस विषय में यह अपेक्षा रहती है कि कोई विशिष्ट पाठक किसी निर्दिष्ट गद्यांश-पद्यांश को पढ़ेगा और निर्धारित प्रश्नों के उत्तर उसी अनुच्छेद के आधार पर संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करेगा। महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि अपनी ही भाषा-शैली में समस्त प्रस्तुतिकरण करना होता है। अपठित से सम्बद्ध प्रश्नों का जहाँ तक सम्बन्ध है, वे इस प्रकार के हो सकते हैं—(1) प्रस्तुत गद्यांश, पद्यांश का अथवा उसके किसी अंश का सार लिखना। (2) किसी अंश की व्याख्या करना। (3) कठिन शब्दों, मुहावरों, लोकोक्तियों के अर्थ या भाव लिखना। (4) प्रयुक्त अलंकारों का नाम-निर्देश करना। (5) प्रस्तुत अवतरण का उपयुक्त शीर्षक खोजना। (6) तत्सम, तद्भव, देशज या विदेशी शब्द छाँटकर लिखना। (7) किसी प्रयुक्त पारिभाषिक शब्द की व्याख्या करना आदि।

अपठित और संक्षेपण : इस सन्दर्भ में ध्यान देने योग्य बात यह है कि 'अपठित सार लेखन' और 'संक्षेपण' दोनों पर्याप्त भिन्न हैं। संक्षेपण में हम प्रस्तुत गद्यांश का लगभग एक-तिहाई में, व्यवस्थित, सहज और स्पष्ट रूप में संक्षिप्त गद्यांश की रचना करते हैं किन्तु सार-लेखन में एक-तिहाई जैसा कोई बन्धन नहीं रहता।

यहाँ सारांश या भावार्थ मूल के अत्यन्त लघु रूप के बराबर भी दे सकते हैं। हालाँकि 'अपठित' और 'संक्षेपण' दोनों प्रकार के अवतरण प्रायः अनदेखे अथवा अनिर्धारित होते हैं क़िन्तु इनके उद्देश्य और रचना में पर्याप्त भेद है।

अपठित में हमारा उद्देश्य केवल दिए गए प्रश्नों का उत्तर देना है जिसमें

सार-लेखन एक भी एक प्रश्न हो सकता है। किन्तु 'संक्षेपण' में मूल को संक्षिप्त करना और उसका शीर्षक सुझाना मात्र है। अपठित में किसी भी अंश की व्याख्या भी पूछी जाती है किन्तु संक्षेपण में व्याख्या के लिए बिल्कुल अवसर नहीं होता। अपठित में मुहावरे, लोकोक्तियाँ या किसी शब्द विशेष का यथार्थ भी पूछा जाता है किन्तु संक्षेप में ऐसा कुछ निर्दिष्ट नहीं होता। 'अपठित' और 'संक्षेपण' में समानता और महत्ता है—संक्षिप्तता, व्यवस्था और सहज स्पष्टता की।

अपठित से अपेक्षा की जाती है कि उसके किसी भी प्रश्न का उत्तर संक्षिप्त होना चाहिए। विस्तृत उत्तर की गुँजाइश भी अपठित में नहीं रहती। सारांश अथवा भावार्थ प्रस्तुत करते समय तथ्यों का पारस्परिक क्रम व्यवस्थित कर लेना चाहिए। उत्तर में प्रयुक्त भाषा-शैली, वाक्य-संरचना सहज और स्पष्ट होनी चाहिए। ऐसा न हो कि उत्तर को पढ़ने के बाद उसका अभिप्राय समझने के लिए एक बार फिर मूल अवतरण को पढ़ना पड़े। यदि ऐसा होता है तो अपठित का उद्देश्य ही नष्ट हो जाएगा।

महत्त्व : जब कभी किसी विषय पर पल्लवन करना पड़ता है, या निबन्ध लिखना पड़ता है तो उससे लेखक की विषयवस्तुपरक और अभिव्यक्तिपरक योग्यता का मूल्यांकन किया जाता है। इसी प्रकार अपठित के प्रश्नों के उत्तर के द्वारा लेखक की व्यक्तिगत योग्यता, अभिव्यक्ति क्षमता का पता लगाया जाता है। इन विषयों के माध्यम से हमारी ग्राहिका शक्ति का अनुमान लगता है। वास्तव में निबन्ध, अपठित आदि विषयों का उद्देश्य यह है कि व्यक्ति में किसी विषय को समझने, उसे सुसम्बद्ध करने की कितनी क्षमता है। किसी गद्य-पद्य के अंश को पढ़कर उसे हृदयंगम करने की कितनी योग्यता है। हमारे निरन्तर अध्ययन-क्रम, और सामाजिक क्रियाकलाप के द्वारा व्यक्ति का मानसिक स्तर, उसकी समझ, उसका व्यवहार भी प्रौढ़तर होता जाता है। प्रबुद्ध व्यक्ति किसी विषय को सुनकर एकदम उसके समस्त पहलुओं को समझ जाते हैं। सामान्य व्यक्ति उसे जानने में कुछ देर लगाते हैं। यह प्रत्येक व्यक्ति की व्यक्तिगत क्षमता का स्वाभाविक गुण है।

अपठित का कोई विशेष विषय-क्षेत्र भी नहीं होता। साहित्य, कला, विज्ञान, टैक्नोलॉजी, अर्थशास्त्र अथवा राजनीति किसी भी विषय के अपठित से सामना हो सकता है। ऐसे विषयों के निरन्तर अभ्यास और प्रश्नों के उत्तर देने से हमारा मानसिक स्तर उन्नत होता है। हमारी अभिव्यक्ति दक्षता में प्रौढ़ता आती है। जिस प्रकार संक्षेपण-कला में लगातार अभ्यास से ही निपुणता आती है, उसी प्रकार

अपठित में पटुता के लिए भी अभ्यास अनिवार्य है। हमें अपने पाठ्यक्रम में निर्धारित पुस्तकों से अलग अच्छी पुस्तकें पढ़ने की आदत डालनी चाहिए। उनके कुछ अंशों का अपठित के रूप में प्रश्न-उत्तर के माध्यम से अभ्यास करना चाहिए।

विधि एवं विशेषताएँ

अपठित अवतरण के प्रश्नों का उत्तर देने के लिए हम किसी-न-किसी रचना-प्रक्रिया से गुजरते हैं। इनमें से मुख्य सोपान इस प्रकार हैं—

1. मौन वाचन : प्रस्तुत अवतरण को मन-मन में एक-दो बार पढ़ना चाहिए। पहली या दूसरी बार में उस अनुच्छेद का मूल भाव या प्रतिपाद्य स्पष्ट हो जाएगा। जब यह आभास हो जाए कि मुख्य रूप में उस अवतरण में क्या कहने की चेष्टा की गई है तब उस अपठित से सम्बद्ध प्रश्नों को ध्यान से पढ़ लेना चाहिए ताकि अपठित को बार-बार पढ़ने का उद्देश्य स्पष्ट हो सके। हम समझ जाएँगे कि अमुक-अमुक प्रश्नों का ही उत्तर इस गद्यांश में से खोजना है।

2. विशिष्ट स्थलों का रेखांकन : प्रश्नों के सन्दर्भ में उस अनुच्छेद को पुनः पढ़ते समय उन शब्दों या वाक्यों को रेखांकित करते जाना चाहिए जो हमारा ध्यान विशेष रूप से आकर्षित करते हों अथवा प्रश्नों के उत्तर में सहायक हों। महत्त्वपूर्ण स्थलों को रेखांकित करने का लाभ यह भी होगा कि सार लिखते समय या भावार्थ लिखते समय हमें अनावश्यक परिश्रम नहीं करना पड़ेगा।

3. मूल कथ्य की पहचान : अपठित अंश को मन-ही-मन में पढ़ने के बाद थोड़ा चिन्तन करना भी अपेक्षित है। आरम्भ, मध्य और अन्त में किन-किन बातों पर बल दिया गया है या किसी विषय-विशेष के कुछ पहलुओं को स्पष्ट किया गया है। थोड़ा-सा गहराई से चिन्तन करने पर यह समझ में आ जाएगा कि प्रस्तुत अंश का वास्तविक कथ्य या प्रतिपाद्य क्या है?

4. सुस्पष्ट और क्रमबद्ध लेखन : उपर्युक्त समझ बना लेने के पश्चात् प्रश्नों के उत्तर लिखने का अवसर आता है। हमें प्रश्नों के उत्तर क्रमशः लिखने चाहिए। 'सार' या 'भाव' लिखना हो तो अपठित की मुख्य-मुख्य बातों को व्यवस्थित क्रम से संक्षेप में लिख देना चाहिए। अपने उत्तर में आने वाली बातों में तारतम्य बैठाना अनिवार्य है। इससे पता चलता है कि लेखक अपनी प्रतिभा और अभ्यास का परिचय दे रहा है। मूल अवतरण के अंशों का हू-ब-हू उपयोग प्रश्नों के उत्तर में नहीं कर रहा।

5. सहज भाषा-शैली : अपठित सम्बन्धी प्रश्नों के उत्तर में सबसे महत्त्वपूर्ण

बात लेखक की अभिव्यक्ति क्षमता की है। इस बात का संकेत हम पहले भी कर आए हैं। अभिव्यक्ति व्यक्ति की निजी पहचान है। अपठित के उत्तर देते समय भाषा एकदम सरल, व्यावहारिक और सहज होनी चाहिए। ऐसी शब्दावली का प्रयोग करना चाहिए जैसे हम किसी व्यक्ति को संक्षेप में कुछ समझा रहे हों। वाक्य छोटे-छोटे बनाने चाहिए। पुनरुक्ति करना और आलंकारिक या बनावटी लच्छेदार भाषा का प्रयोग करना एकदम अनुचित होगा।

6. संक्षिप्तता : यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो चुकी है कि संक्षिप्तता किसी भी अपठित का अनिवार्य अंग है। चाहे सार का भाव लिखना हो या अपठित से सम्बन्धित किसी प्रश्न का उत्तर लिखना हो—कम-से-कम शब्दों में अपनी बात कहने का प्रयास करना चाहिए। किसी भी प्रश्न का उत्तर एक-दो वाक्यों से अधिक नहीं होना चाहिए। शीर्षक देते समय तो संक्षिप्तता का विशेष ध्यान रखना पड़ता है। यदि एक ही शब्द का शीर्षक उपयुक्त न बन पाए तो दो-तीन शब्द से अधिक बड़ा शीर्षक न दें। उदाहरणतः 'महँगाई' या 'महँगाई की मार'। 'बेरोजगारी' या 'बेरोजगारी की समस्या'—शीर्षक तो ठीक है। किन्तु 'हाय, महँगाई ने मार डाला' या 'बेरोजगारी ने तबाह कर दिया'—ये शीर्षक न होकर वक्तव्य माना जाएगा। ऐसे प्रयोगों से बचना चाहिए। इस प्रकार शब्द-बंध का चुनाव निरन्तर अभ्यास से आता है।

7. उन्मुक्तता : उन्मुक्तता से अभिप्राय है खुलापन या उदारता। अपठित के प्रश्नों और अपठित को यदि पूरी तरह समझने में कठिनाई आ रही हो तो घबराना नहीं चाहिए। उस अवतरण के विषय में जो कुछ भी समझ में आए उसे अपने शब्दों में संक्षेप में कहना चाहिए। पद्यांश की व्याख्या में विशेष रूप से उन्मुक्तता की आवश्यकता पड़ती है। चार या आठ पंक्तियों की कविता को ध्यान से पढ़ने पर कुछ-न-कुछ भाव अवश्य ग्रहण किया जा सकता है। उसे ही व्यवस्थित करके लिखने की योग्यता आनी चाहिए।

अन्य उपादेय संकेत

(1) अपठित का भावार्थ पूछा गया है तो सार-लेखन की प्रक्रिया को इस तरह दोहराना चाहिए कि केवल आधारभूत अंशों अर्थात् शीर्षक से जुड़े अंशों को रेखांकित करना चाहिए। इसका लाभ यह होगा कि भावार्थ का जो अन्तिम प्रारूप तैयार होगा, वह प्रायः मूल अवतरण का दस्वाँ हिस्सा रह जाएगा। भावार्थ में अनपेक्षित विस्तार नहीं होना चाहिए। मूल अवतरण की कोई अपेक्षित बात नहीं छोड़नी चाहिए अन्यथा भावार्थ अपूर्ण लगेगा।

(2) यदि अपठित अवतरण की व्याख्या देनी है तो भी सार-लेखन की भाँति प्रस्तुत अवतरण के मुख्य अंशों को रेखांकित कर लेना चाहिए। इसके पश्चात् प्रत्येक रेखांकित अंश को संकेत मानकर गद्यांश में उसकी व्याख्या खोजनी चाहिए। अपने आप समझ कर विस्तार से उसकी व्याख्या समझानी चाहिए। व्याख्या सदा प्रस्तुत कथ्य से जुड़ी होनी चाहिए। कोई नवीन बात या जानकारी अपनी ओर से नहीं जोड़नी चाहिए। प्रत्येक संकेत की महत्त्व के अनुसार ही उसकी व्याख्या का विस्तार होना अपेक्षित है। व्याख्या करते समय नवीन उदाहरण और नवीन कहावतें भी प्रयुक्त हो सकती हैं।

(3) अपठित अनुच्छेद में निर्दिष्ट अंशों, शब्दों या अभिव्यक्तियों के अर्थ भी पूछे जाते हैं। उत्तर में उन शब्दों या अंशों को सबसे पहले लिखकर उनके सामने उनके अर्थ लिखने चाहिए। जैसे शब्दकोश में दिए जाते हैं। अर्थ लिखते समय शब्दों या पारिभाषिक शब्दों की परिभाषा, व्याख्या और उनके पर्याय भी देने चाहिए। किसी अवतरण में किसी शब्द या पदबन्ध विशेष के एक से अधिक अर्थ निकलते हों तो उन्हें सन्दर्भित अवतरण के अनुसार स्पष्ट कर देने से भी योग्यता का परिचय मिलता है।

अपठित के कुछ उदाहरण

उदाहरण-1 : "प्रत्येक राष्ट्र की अपनी एक सांस्कृतिक धरोहर होती है जिसके बल पर वह प्रगति के पथ पर अग्रसर होता रहता है। मानव युग-युग से अपने जीवन को अधिक सुखमय, उपयोगी, शान्तिमय और आनन्दपूर्ण बनाने का प्रयास करता रहा है। इस प्रयास का आधार वह सांस्कृतिक धरोहर होती है जो प्रत्येक मानव को विरासत के रूप में मिलती है और इस प्रयास के फलस्वरूप मानव अपना विकास करता है। कुछ लोग सभ्यता और संस्कृति को एक ही मानते हैं। यह उनकी भूल है। यों तो संस्कृति और सभ्यता में घनिष्ठ सम्बन्ध है; किन्तु संस्कृति मानव जीवन को श्रेष्ठ एवं उन्नत बनाने की साधनाओं का नाम है और सभ्यता उन साधनाओं के फलस्वरूप उपलब्ध हुई जीवन-प्रणाली का नाम है। सभ्यता के अन्तर में बहने वाली विचारधारा को हम संस्कृति कह सकते हैं। संस्कृति अच्छी या बुरी हो सकती है। किसी राष्ट्र की सभ्यता का मूल्यांकन हम उसकी संस्कृति के आधार पर कर सकते हैं। प्रत्येक राष्ट्र की संस्कृति वहाँ की भौगोलिक परिस्थितियों पर निर्भर है। प्रकृति का मानव जीवन को प्रभावित करने में बड़ा महत्त्वपूर्ण हाथ रहता है।"

उपर्युक्त गद्यांश के आधार पर निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर अपनी भाषा में दीजिए :

(क) सभ्यता और संस्कृति में क्या अन्तर है?

(ख) अन्तिम वाक्य का तात्पर्य स्पष्ट कीजिए।

(ग) उपर्युक्त अवतरण का केवल पाँच वाक्यों में सार लिखिए।

(घ) रेखांकित (मोटे) शब्दों के अर्थ बताइए।

(ङ) इस अवतरण का उपयुक्त शीर्षक दीजिए।

उत्तर-1 : (क) सभ्यता एक जीवन-प्रणाली है जिसका सम्बन्ध बहिरंग से होता है। इसके विपरीत संस्कृति हमारे मन-मस्तिष्क और हमारी आत्मा में विकसित होने वाली आन्तरिक चेतना और विचारधारा का नाम है। संस्कृति साधना है और सभ्यता उसका फल।

(ख) प्रकृति का प्रभाव मानव-जीवन के हर पहलू पर दिखाई देता है। हमारे रहन-सहन, वेश-विन्यास और खान-पान का मूल आधार प्राकृतिक स्थिति ही होती है। जैसा प्राकृतिक वातावरण होता है वैसा ही हमारा स्वास्थ्य बनता है। हम प्रकृति के विभिन्न रूपों से ही नए विचार और प्रेरणा ग्रहण करते हैं।

(ग) हर राष्ट्र अपनी सांस्कृतिक विचारधारा के आधार पर उन्नति या प्रगति करता है। संस्कृति से ही सभ्यता का विकास होता है। सभ्यता और संस्कृति में अन्तर है। सभ्यता का सम्बन्ध हमारे जीवन के बहिरंग पक्ष से है और संस्कृति का आन्तरिक पक्ष से। साथ ही राष्ट्र की उन्नति प्राकृतिक वातावरण पर ही आधारित है।

(घ) धरोहर—अमानत। घनिष्ठ—गहरा पक्का। उपलब्ध—प्राप्त। जीवन-प्रणाली—जीवन व्यतीत करने की विधि। मूल्यांकन—परख।

(ङ) संस्कृति की महत्ता।

उदाहरण-2 : "नौजवानो! इस वक्त तुम्हारी कोई मंजिल नहीं, क्योंकि अब तक तुम्हें मंजिल किसी ने दिखाई ही नहीं। 'बढ़े चलो' सभी कहते रहे। कहाँ?—यह न किसी ने बताया न किसी ने पूछा। अब पूछने की आवश्यकता भी नहीं—अपनी मंजिल खुद तय करो! इस मंजिल को तय करते समय इतना ध्यान रहे कि तुम वह ही नहीं, जो नित्य नई छवियाँ धारण करते नगरों के कॉलेजों, दफ्तरों या रास्तों में हो, दूर...उजाड़ गाँवों में अपने लहू से सींचे जाने वाले खेतों की मिट्टी में भी तुम हो, तुम बर्फीली चोटियों और ऊँची-नीची पथरीली राहों पर देश का भार अपनी पीठ पर लादने वालों में भी हो और तपती रेगिस्तानों में ऊँटों के

काफ़िलों पर देश की प्रतिष्ठा ढोने वालों में भी! वह तुम ही हो जो न तो गरजती हुई समुद्री लहरों के थपेड़ों में मछलियाँ पकड़ते हुए भयभीत होते हो और न दिन-रात मशीनों की गड़गड़ाहट सुनकर बहरे होते हो! नौजवानो! अपने इन सपनों को एक कर लो, तब देखो तुम कितने महान् हो, कितने विशाल!''

उपर्युक्त गद्यांश को पढ़कर इन प्रश्नों के उत्तर दीजिए—

(क) इस गद्यांश का उपयुक्त शीर्षक क्या हो सकता है?

(ख) आज नौजवानों को कोई मंजिल क्यों नहीं दीखती?

(ग) नौजवान किस-किस क्षेत्र में साधना कर रहे हैं?

(घ) प्रस्तुत गद्यांश का सार केवल पाँच वाक्यों में लिखिए।

उत्तर-2 : (क) अपना हाथ जगन्नाथ।

(ख) आज नौजवान इसलिए भटक रहे हैं कि कोई उन्हें लक्ष्य का मार्ग बताने वाला नहीं है। नेता और शिक्षक उपदेश तो बहुत देते हैं परन्तु व्यावहारिक मार्ग-दर्शन नहीं करते। इसलिए नौजवानों को कोई मंजिल नहीं दीखती।

(ग) देश के नौजवान कॉलिजों और दफ्तरों के अतिरिक्त, गाँव-देहातों, खेत-खलिहानों, उद्योग-कारखानों, देश की सीमाओं आदि अनेक क्षेत्रों में साधना कर रहे हैं।

(घ) आजकल नौजवानों को भाषण और उपदेश तो बहुत दिए जाते हैं, परन्तु उन्हें जीवन का सही लक्ष्य कोई नहीं बताता। नौजवानों को नेताओं और उपदेशकों के भरोसे न रहकर अपना लक्ष्य स्वयं बनाना चाहिए। कॉलिजों, दफ्तरों और सैर-सपाटों की बजाए उन्हें गाँव-देहातों, खेत-खलिहानों, कारखानों और फ़ैक्टरियों में परिश्रम करना चाहिए।

उदाहरण-3 : ''मनुष्य के शरीर में आँसू भी गड़े हुए खजाने के माफिक हैं। जैसा कभी कोई नाजुक वक्त आ पड़ने पर संचित पूँजी ही काम देती है, उसी तरह हर्ष, शोक, भय प्रेम इत्यादि भावों को प्रकट करने में जब सब इन्द्रियाँ स्थगित होकर हार मान बैठती हैं, तब आँसू ही उन-उन भावों को प्रकट करने में सहायक होता है। चिरकाल के वियोग के उपरान्त जब किसी दिली दोस्त से मुलाकात होती है, तो उस समय हर्ष और प्रमोद के उफान में अंग-अंग ढीले पड़ जाते हैं, वाष्प-गद्गद कंठ रुँध जाता है, जिह्वा इतनी शिथिल पड़ जाती है कि उससे मिलने की खुशी को प्रकट करने के लिए एक-एक शब्द मानो बोझ-सा मालूम पड़ता है। पहले इसके कि शब्दों से वह अपना असीम आनन्द प्रकट करे, सहसा आँसू की नदी उसकी आँख में उमड़ आती है और नेत्र के पवित्र जल

से वह अपने प्राण-प्रिय को नहलाता हुआ उसे बगलगीर करने हो हाथ फैलाता है।"

(क) ऊपर दिए गए गद्यांश का उपयुक्त शीर्षक लिखिए।

(ख) इस गद्यांश का सार केवल पाँच वाक्यों में लिखिए।

(ग) लेखक ने आँसुओं को गढ़ा हुआ खजाना क्यों कहा है?

(घ) आँसू कब शब्दों से भी अधिक मूल्यवान हो जाते हैं?

उत्तर-3 : (क) आँसू : अनमोल धन।

(ख) आँसू मनुष्य के सच्चे साथी और सहायक हैं। जैसे सँभालकर रखा गया धन मुसीबत में काम आता है, उसी प्रकार मनुष्य के हर नाजुक समय में आँसू उसकी शब्दों से भी अधिक सहायता करते हैं। बहुत लम्बे वियोग के बाद किसी मित्र के मिलने पर, आनन्द के आवेग से जब मनुष्य कुछ बोल नहीं पाता तो उसके आँसू उमड़ कर उसके हृदय के आवेग को प्रकट कर देते हैं।

(ग) जिस प्रकार किसी व्यक्ति द्वारा छुपा कर बचाया हुआ धन मुसीबत में उसके काम आता है, उसी प्रकार नाजुक और भावुकतापूर्ण क्षणों में मनुष्य के हृदय की भावनाओं को प्रकट करने में जब शब्द असमर्थ हो जाते हैं तो उसकी अन्तःसंवेदना आँसुओं के माध्यम से व्यक्त हो जाती है। इसलिए लेखक ने आँसुओं को गढ़ा हुआ खजाना कहा है।

(घ) यह ठीक है कि शब्द ही भावों और विचारों को प्रकट करने का माध्यम हैं। परन्तु कई बार हृदय में जब भावों का तीव्र आवेग उमड़ता है तो सहसा उन्हें व्यक्त करने के लिए शब्द नहीं सूझ पाते। तब अनायास आँखों से आँसू उमड़ कर, हमारी अनकही भावनाओं को स्वतः ही प्रकट कर देते हैं। इसलिए वे शब्दों से भी अधिक मूल्यवान हैं।

उदाहरण-4 : "पर उस एक क्षण के हिम-दर्शन ने हममें जाने क्या भर दिया था। सारी खिन्नता, निराशा, थकावट—सब छू-मन्तर हो गई। हम सब आकुल हो उठे। अभी ये बादल छँट जाएँगे और फिर हिमालय हमारे सामने खड़ा होगा, निरावृत...असीम सौन्दर्य राशि हमारे सामने अभी-अभी अपना घूँघट धीरे से खिसका देगी और...और तब? और तब? सचमुच मेरा दिल बुरी तरह धड़क रहा था। शुक्लजी शान्त थे, केवल मेरी ओर देखकर कभी-कभी मुस्कुरा देते थे, जिसका अभिप्राय था, 'इतने अधीर थे, कौसानी आई भी नहीं और मुँह लटका लिया। अब समझे यहाँ का जादू!' डाक-बँगले के खानसामे ने बताया कि 'आप लोग

बड़े खुशकिस्मत हैं साहब! चौदह टूरिस्ट आकर हफ्ते-भर पड़े रहे, बर्फ़ नहीं दीखी। आज तो आपके आते ही आसार खुलने के हो रहे हैं।' ''.

उपर्युक्त अवतरण के आधार पर निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए–

(क) इस अवतरण का सार पाँच वाक्यों में लिखिए।

(ख) इसका उपर्युक्त शीर्षक बताइए।

(ग) रेखांकित (मोटे) शब्दों के अर्थ स्पष्ट कीजिए।

(घ) लेखक ने कौसानी के आने से पहले मुँह क्यों लटका लिया था?

(ङ) लेखक और उसके साथियों की उदासी कैसे दूर हो गई?

उत्तर-4 : (क) लेखक और उसके साथियों को ज्यों ही सामने हिमालय की बर्फ से ढँकी चोटियाँ दिखाई दीं, वे आनन्दविभोर हो गए। उस अनोखे दृश्य को देखकर उनकी सारी थकावट और उदासी दूर हो गई। सबसे बड़ी प्रसन्नता की बात यह थी कि जिस आनन्ददायक अवसर के लिए अन्य यात्री सप्ताह भर से तरस रहे थे, वह लेखक को वहाँ पहुँचते ही मिल गया।

(ख) बर्फीले सौन्दर्य का जादू।

(ग) हिम-दर्शन–बर्फ दिखाई देना। खिन्नता–उदासी। छू-मन्तर–अदृश्य, लुप्त। आकुल–उतावले, बेचैन। निरावृत्त–अनढकी, खुली। असीम–बहुत अधिक, भरपूर। सौन्दर्य राशि–सुन्दरता का खजाना। मुँह लटका लेना–उदास हो जाना। आसार–लक्षण।

(घ) लेखक कौसानी पहुँचने से पहले इसलिए उदास हो गया था क्योंकि हिमालय के जिस बर्फीले सौन्दर्य को देखने के लिए इतनी लम्बी यात्रा और ऊँची चढ़ाई की थी, वह अभी दिखाई नहीं दिया था।

(ङ) हिमालय की चोटियों पर, सूर्य की किरणों से चमकती बर्फ का अद्भुत सौन्दर्य देखकर लेखक तथा उसके मित्रों की सारी उदासी दूर हो गई।

उदाहरण-5 : ''जो धीर हैं, जो उद्वेगरहित हैं, वही संसार में कुछ कर सकते हैं। जो लोहे की चादर की भाँति ज़रा में ही गर्म हो जाते हैं और जरा में ही ठण्डे पड़ जाते हैं, उनके लिए क्या हो सकता है। कहा भी गया है–जो बादल गरजते हैं बरसते नहीं। धीर पुरुष का मन समुद्र के समान होता है। वह गम्भीर और अथाह होता है। समुद्र की तरह मर्यादा-पालन में उसकी यह दशा है कि आनन्द और ऐश्वर्य रूपी नव-नदियाँ उसमें गिरती हैं पर क्या मजाल कि वह जरा भी मर्यादा का उल्लंघन करें।''

(क) उपर्युक्त अवतरण का अपने शब्दों में सार लिखिए।

(ख) अवतरण का उपयुक्त शीर्षक दीजिए।

(ग) रेखांकित अंशों के अभिप्राय को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर-5 : (क) संसार में धैर्यवान पुरुष ही कुछ कर सकते हैं। जरा-सी बात से एकदम प्रसन्न या बहुत उदास हो जाने वाले लोग सफल नहीं हो सकते। जिस प्रकार समुद्र अपने भीतर अनेक नदियाँ गिरने पर भी शान्त और गम्भीर रहता है, उसी प्रकार गम्भीर पुरुष विभिन्न परिस्थितियों में भी विचलित नहीं होता।

(ख) धैर्य का महत्त्व।

(ग) रेखांकित अंशों का स्पष्टीकरण—

बिना किसी हलचल के।

लोहे की चादर तनिक गर्मी में गर्म और सर्दी में तुरन्त ठण्डी पड़ जाती है। अस्थिर चित्त वाले व्यक्ति भी जरा से लाभ में फूल जाते हैं और थोड़ा-सा कष्ट आने पर ही मुँह लटका लेते हैं।

बहुत अधिक बढ़-चढ़कर बातें बनाने वाले व्यक्ति व्यावहारिक रूप से कुछ नहीं करते।

समुद्र विशाल होता है। उसमें असंख्य नदियों का जल प्रतिदिन भरता रहता है। फिर भी वह सदा एक-सा रहता है। इसी प्रकार धैर्यवान और गम्भीर व्यक्ति बहुत ऐश्वर्य होने पर भी शान्त और विनम्र रहते हैं।

समुद्र को मिलने वाली छोटी-बड़ी नदियाँ मानो उसे मिलनेवाले छोटे-बड़े लाभ हैं। इतना वैभव और सुख मिलने पर भी समुद्र स्थिर रहता है।

उदाहरण-6 : "आत्म-संस्कार के विधान का स्वाध्याय एक प्रधान अंग है। हमारे लिए किसी जाति के उस साहित्य में गति प्राप्त करने का और कोई द्वार नहीं, जिसमें उसके भाव और विकार व्यक्त रहते हैं तथा उसकी उन्नति के क्रम का लेखा रहता है। मनुष्य जाति के सुख और कल्याण के विषय में संसार के प्रतिभा-सम्पन्न पुरुषों ने जो सिद्धान्त स्थिर किए हैं, उन्हें जानने का और कोई उपाय नहीं। जो मनुष्य पढ़ना नहीं जानता, उसे भूत काल का कुछ ज्ञान नहीं। वह जो कुछ सोचता है, विचारता है, परीक्षा करता है, वह अपनी ही छोटी-सी पहुँच और अपने ही अल्प साधनों के अनुसार। उसे उस भण्डार का पता नहीं जो न जाने कितनी पीढ़ियों से संचित हो आया है।"

(क) उपर्युक्त गद्यांश का उपयुक्त शीर्षक दीजिए।

(ख) इस अवतरण का सार अपने शब्दों में लिखिए।

(ग) रेखांकित (काले) शब्दों को अर्थ स्पष्ट कीजिए।

(घ) निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर दीजिए—

(1) आत्मसंस्कार के लिए स्वाध्याय क्यों आवश्यक है?

(2) पढ़ना न जानने वाला मनुष्य किन बातों से वंचित रहता है?

उत्तर-6 : (क) स्वाध्याय का महत्त्व।

(ख) अध्ययन से हम अपने को सुधार सकते हैं। अध्ययन के बिना हम न तो किसी जाति के इतिहास को जान सकते हैं और न ही हमें मानव-कल्याण के लिए अब तक के अनेक कार्यों का पता लग सकता है। अनपढ़ व्यक्ति ज्ञान के अथाह भण्डार का कोई लाभ नहीं उठा सकता।

(ग) आत्म-संस्कार=अपने आपको सुधारना। गति प्राप्त करना=अच्छी जानकारी होना। प्रतिभा-सम्पन्न=विशेष बुद्धिमान। संचित=एकत्रित।

(घ) प्रश्नों के उत्तर—

(1) स्वाध्याय अर्थात् अपने-आप अच्छी पुस्तकों के अध्ययन से मनुष्य दूसरों के गुण-अवगुण पहचानता है। उनके अनुभवों के आधार पर अपने को सुधारने में सफल होता है।

(2) जो व्यक्ति पढ़ना नहीं जानता, उसका ज्ञान सीमित रहता है। वह समाज, देश और संसार में होने वाले विकास की जानकारी से वंचित रहता है।

उदाहरण-7 : ''भारत की शस्यश्यामला भूमि में जो निसर्ग-सिद्ध सुषमा है, उससे भारतीय कवियों का चिरकाल से अनुराग रहा है। यों तो प्रकृति की साधारण वस्तुएँ भी मनुष्य मात्र के लिए आकर्षक होती हैं, परन्तु उसकी सुन्दरतम विभूतियों में मानव-वृत्तियाँ विशेष प्रकार से रमती हैं। अरब के कवि मरुस्थल में बहते हुए किसी साधारण से झरने अथवा ताड़ के लम्बे-लम्बे पेड़ों से ही सौन्दर्य का अनुभव कर लेते हैं तथा ऊँटों की चाल में ही सुन्दरता की कल्पना कर लेते हैं, परन्तु जिन्होंने भारत की हिमाच्छादित शैलमाला पर संख्या की सुनहली किरणों की सुषमा देखी है, अथवा जिन्हें घनी अमराइयों की छाया में कल-कल ध्वनि से बहती हुई निर्झरिणी तथा उसकी समीपवर्तिनी लताओं की वसन्त-श्री देखने का अवसर मिला है, साथ ही जो यहाँ के विशालकाय हाथियों की मतवाली चाल देख चुके हैं, उन्हें अरब की उपर्युक्त वस्तुओं से सौन्दर्य तो क्या हाँ, उलटे नीरसता, शुष्कता और भद्दापन ही मिलेगा।''

(क) उपर्युक्त गद्यांश का उपयुक्त शीर्षक दीजिए।

(ख) इस अवतरण का सार अपने शब्दों में लिखिए।

(ग) रेखांकित (काले) शब्दों के अर्थ स्पष्ट कीजिए।

(घ) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में लिखिए–

(1) भारत की प्रकृति की क्या विशेषता है?

(2) भारत के प्राकृतिक सौन्दर्य को देखने के बाद अरब का प्राकृतिक वातावरण कैसे लगेगा?

उत्तर-7 : (क) प्रकृति और काव्य।

(ख) प्रकृति की सुन्दरता मनुष्यमात्र को मोह लेती है, कवि को वह विशेष प्रिय रही है। हर देश का कवि अपने चारों ओर के प्राकृतिक वातावरण से ही काव्यमयी अनुभूतियाँ ग्रहण करता है। अरब के कवि के लिए मरुस्थल और खजूर के वृक्ष में ही सौन्दर्य है, जबकि भारतीय कवि यहाँ के मनोरम प्राकृतिक दृश्यों में खो जाता है।

(ग) शस्यश्यामला=हरी भरी। निसर्गसिद्ध=स्वाभाविक। वृंत्तियाँ=रुचियाँ। मरुस्थल=रेगिस्तान। हिमाच्छादित= बर्फ से ढँकी। शैलं-माला=पर्वतों की कतार। निर्झरिणी=नदी।

(घ) प्रश्नों के उत्तर–

(1) भारत की प्रकृति की अनेक विशेषताएँ हैं। वह सुन्दर, विविधता से पूर्ण, मनोहर और आनन्द प्रदान करने वाली है। हरे-भरे मैदान, बर्फीले पहाड़ों की चोटियाँ और कल-कल गाती नदियाँ मुग्ध कर लेती हैं।

(2) भारत के प्राकृतिक सौन्दर्य को देखने के बाद अरब का वातावरण नीरस, शुष्क और भद्दा-सा प्रतीत होगा।

उदाहरण-8 : "आनन्द की उपासना करना और उल्लास से जीवन को भर लेना ही मनुष्य का स्वभाव है। उत्सव हमारे लिए उत्तर कोटि का मनोरंजन प्रदान करता है। आधुनिक मनोरंजन के साधन हमारे सतही मन का मनोरंजन भर कर पाते हैं जबकि उत्सवों का सम्बन्ध हमारी आस्था से जुड़ा हुआ है। उत्सव हमारे मन को ही नहीं, हमारी आत्मा तक को झंकृत कर देते हैं, हमारे संस्कारों को माँजते हैं और हमें एक उन्नत मनुष्य बनाते हैं। हमारे उत्सव हमारी संस्कृति से जुड़े हुए हैं। अनेक उत्सव ऐसे हैं जिनका आध्यात्मिक महत्त्व है। दीपकोत्सव क्या है? वास्तव में अंधकार पर प्रकाश की विजय का प्रतीक, अज्ञान पर ज्ञान की विजय का प्रतीक। एक तरफ ऋषिगण प्रार्थना करते हैं और दूसरी तरफ वे दीपकोत्सव मनाते हैं। इन उत्सवों के मर्म को जानने वाला जीवन का मर्म जान लेगा, यही सोचकर सम्भवतः प्राचीन भारतवासियों ने नाना प्रकार के उत्सवों की

सृष्टि की। ऐसे गम्भीर और महत्त्वपूर्ण उत्सवों से कटने की नहीं, जुड़ने की आवश्यकता है।"

(क) उपरोक्त गद्यांश का सार अपने शब्दों में लिखिए।

(ख) गद्यांश का शीर्षक दीजिए।

(ग) रेखांकित (काले) शब्दों का अर्थ स्पष्ट करते हुए वाक्यों में प्रयोग कीजिए।

(घ) भाव-विस्तार कीजिए–

"उत्सव हमारे संस्कारों को माँजते हैं और हमें एक उन्नत मनुष्य बनाते हैं।"

उत्तर-8 : (क) गद्यांश का सार–मनुष्य के जीवन का स्वाभाविक लक्ष्य है–आनन्द और उल्लास। इस लक्ष्य की पूर्ति में मनुष्य को सबसे अधिक सहायता उत्सवों से प्राप्त होती है। उत्सव मनुष्य को स्वच्छ और आंतरिक मनोरंजन तो प्रदान करते ही हैं, साथ ही उसके स्वभाव और आचरण के परिष्कार और विकास में भी सहायक होते हैं। दीपमाला का उत्सव इसका सर्वोत्तम प्रमाण है ज़ो मनुष्य को अज्ञान के अंधकार से निकालकर ज्ञान के प्रकाश की ओर उन्मुख करता है। वास्तव में यदि हम जीवन का सच्चा मर्म जानना चाहते हैं तो पहले उत्सवों के मर्म को समझना आवश्यक है। हम उत्सवों में जितनी अधिक रुचि लेंगे उतना ही हमारा जीवन आनन्दमय होगा।

(ख) उत्सवों की उपयोगिता।

(ग) शब्दों का अर्थ और वाक्य-प्रयोग–

संस्कृति–अतिरिक्त संस्कार, आचार-विचार और विश्वास। विश्व में भारतीय संस्कृति सबसे प्राचीन है।

मर्म–रहस्य। उत्सवों का मर्म जान लेने के बाद जीवन का मर्म स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है।

सृष्टि–रचना। हर कलाकार अपनी कल्पना से किसी अद्‌भुत लोक की सृष्टि करता है।

(घ) भाव-विस्तार–उत्सवों से हमारे आन्तरिक भावों और विचारों का परिष्कार होता है। उत्सवों की सहायता से हमारी चित्तवृत्तियाँ निर्मल और पवित्र हो जाती हैं। ईर्ष्या-वैर, अहंकार-क्रोध आदि विकार क्षीण होते हैं तथा आपसी स्नेह-सौहार्द, मैत्री और प्रेम का विकास होता है। इस प्रकार उत्सव हमें श्रेष्ठ मनुष्य बना देते हैं।

अपठित अभ्यास के लिए कुछ अनुच्छेद

1. "प्रत्येक राष्ट्र की अपनी एक सांस्कृतिक धरोहर होती है जिसके बल पर वह प्रगति के पथ पर अग्रसर होता रहता है। मानव युग-युग से अपने जीवन को अधिक सुखमय, उपयोगी, शान्तिमय और आनन्दपूर्ण बनाने का प्रयास करता रहा है। इस प्रयास का आधार वह सांस्कृतिक धरोहर होती है जो प्रत्येक मानव को विरासत के रूप में मिलती है और इस प्रयास के फलस्वरूप मानव अपना विकास करता है। कुछ लोग सभ्यता और संस्कृति को एक ही मानते हैं। यह उनकी भूल है। यों तो संस्कृति और सभ्यता में घनिष्ठ सम्बन्ध है; किन्तु संस्कृति मानव जीवन को श्रेष्ठ एवं उन्नत बनाने की साधनाओं का नाम है और सभ्यता उन साधनाओं के फलस्वरूप उपलब्ध हुई जीवन-प्रणाली का नाम है। सभ्यता के अन्तर में बहने वाली विचारधारा को हम संस्कृति कह सकते हैं। संस्कृति अच्छी या बुरी हो सकती है। किसी राष्ट्र की सभ्यता का मूल्यांकन हम उसकी संस्कृति के आधार पर कर सकते हैं। प्रत्येक राष्ट्र की संस्कृति वहाँ की भौगोलिक परिस्थितियों पर निर्भर है। प्रकृति का मानव जीवन को प्रभावित करने में बड़ा महत्त्वपूर्ण हाथ रहता है।"

उपर्युक्त गद्यांश के आधार पर निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर अपनी भाषा में दीजिए—

(क) सभ्यता और संस्कृति में क्या अन्तर है?
(ख) अन्तिम वाक्य का तात्पर्य स्पष्ट कीजिए।
(ग) उपर्युक्त अवतरण का केवल पाँच वाक्यों में सार लिखिए।

2. "मानव के पास समस्त जगत को देखने-परखने के दो नजरिए हैं—एक आशावादी और दूसरा निराशावादी। इसे सकारात्मक और नकारात्मक दृष्टि भी कहते हैं। जो आशावादी या सकारात्मक मार्ग पर चलते हैं वे सदैव आनन्द की अनुभूति प्राप्त करते हैं तथा निराशावादी या नकारात्मक दृष्टि वाले दुःख के सागर में डूबे रहते हैं और सदा अपने आपको प्रस्थापित करने के लिए तर्क किया करते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि तर्क से कुतर्क और कुतर्क से ज्ञान का नाश होता है एवं जीवन में विकृति उत्पन्न होती है। आशावादी कभी तर्क नहीं करता फलस्वरूप वह आन्तरिक आनन्द की प्रतीति करता है। वह मानता है कि आत्मिक आनन्द कभी प्रहार या काटने की प्रक्रिया में नहीं है। किसी परम्परा के विरोध करने से ही प्रतिभा ऊपर नहीं उठती। भला सोचो हिमालय जिस उत्तुंग शृंग को लिए विश्व में सर्वोच्च बना हुआ है, उसने कब किसका विरोध किया? विरोध

से नाश होता है। इसीलिए जगत में सदा आशावाद ही पनपा है, उसने ही महान् व्यक्तियों का सृजन किया है। निराशावाद या नकारात्मक की नींव पर कभी किसी प्रासाद का निर्माण हुआ है?"

उपर्युक्त गद्यांश के आधार पर निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए–

(1) इस गद्यांश का उपयुक्त शीर्षक सुझाइए।

(2) इस गद्यांश का सार अपने शब्दों में लिखिए।

(3) रेखांकित (काले) शब्दों का अभिप्राय स्पष्ट कीजिए।

(4) आशावाद और निराशावाद में अन्तर बताइए।

3. "उत्तर भारत की प्रायः सभी भाषाएँ संस्कृत से निकली हैं और उन सभी के शब्दों में पारिवारिक समानता है। दक्षिण की भाषाएँ भी संस्कृत से प्रभावित हुई हैं। उन्होंने भी थोड़ी-बहुत मात्रा में संस्कृत की शब्दावली ग्रहण की, किसी ने थोड़ी तो किसी ने बहुत। उर्दू को छोड़कर प्रायः सभी भाषाओं की वर्णमाला एक नहीं तो एक-सी है। केवल लिपि का भेद है। मराठी और देवनागरी की लिपि समान है। संस्कृत की परिनिष्ठित लिपि होने के कारण देवनागरी प्रायः अभी प्रान्तों में पहचानी जाती है। उर्दू का लिपि-भेद होते हुए भी हिन्दी के साथ भाषा में साम्य है। भाषा की जमीन और व्याकरण प्रायः एक से हैं। बेल-बूटे फारसी-अरबी के हैं।"

प्रस्तुत अनुच्छेद के आधार पर इन प्रश्नों के उत्तर दीजिए–

(1) इस अनुच्छेद का सार अपने शब्दों में लिखिए।

(2) इस अनुच्छेद का शीर्षक दीजिए।

(3) उत्तर भारत की भाषाओं और संस्कृत भाषा का पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित कीजिए।

4. "मित्र का कर्तव्य इस प्रकार बताया गया है–'उच्च और महाकार्यों में इस प्रकार सहायता देना, मन बढ़ाना और साहस दिलाना कि तुम अपनी निज की सामर्थ्य से बाहर काम कर जाओ।' यह कर्तव्य उसी से पूरा होगा जो दृढ़-चित्त और सत्य-संकल्प का हो। इससे हमें ऐसे ही मित्रों की खोज में रहना चाहिए जिनमें हमसे अधिक आत्मबल हो। हमें उनका पल्ला उसी तरह पकड़ना चाहिए जिस तरह सुग्रीव ने राम का पल्ला पकड़ा था। मित्र हों तो प्रतिष्ठित और शुद्ध हृदय के हों, मृदुल और पुरुषार्थी हों, शिष्ट और सत्यनिष्ठ हों, जिसमें हम अपने को उनके भरोसे पर छोड़ सकें और यह विश्वास कर सकें कि उनसे किसी प्रकार धोखा न होगा।"

प्रस्तुत गद्यांश के आधार पर इन प्रश्नों का उत्तर दीजिए–

(1) अच्छे मित्र के कौन-कौन से गुण होते हैं।

(2) रेखांकित (काले) शब्दों का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

(3) इस अनुच्छेद का सरल भाषा में सार लिखिए।

(4) इस अनुच्छेद से क्या सन्देश मिलता है?

5. "निराशा कुंठा और प्रवंचना की जननी है। इसका अन्तिम रूप पलायन है। यह कभी भी मानव क्या पशु को भी अपना नहीं बना सकती। इससे लघुता और क्षुद्रता का जन्म होता है। व्यक्ति ग्रंथियुक्त बन जाता है जबकि आशा मनुष्य को मुक्त बनाती है और वह स्वच्छन्द रूप से निर्भीक विचरण करता है। उसके मुखमण्डल पर सौम्य स्मित विखरी रहती है। वह सदा प्रफुल्लित रहता है और चारों दिशाओं में आगे प्रेम की वृष्टि करता है। निराशावादी का चेहरा चिन्ता की रेखाओं से घिरा रहता है। वह सीमित घेरों का निर्माण करता है और सदा हिसाबी आँखों से संसार को देखता है। दूसरों के आनन्द से दुःखी होना ही उसकी वृत्ति होती है। इसीलिए यह भौतिक जगत निराशा का क्षेत्र है।"

उपर्युक्त गद्यांश को ध्यान से पढ़िए और इन प्रश्नों के उत्तर दीजिए–

(1) इस अनुच्छेद का सार अपने शब्दों में लिखिए।

(2) इसका शीर्षक दीजिए।

(3) निराशा से कौन-से परिणाम निकलते हैं?

(4) क्या निराशावादी वृत्ति अलौकिक जगत का क्षेत्र है? हाँ/नहीं।

6. "प्रत्येक संस्कृति के अपने प्रतिनिधि रूप होते हैं जिनमें वह संस्कृति आकार लेती है। ये रूप हर क्षेत्र में होते हैं–रहन-सहन, भोजन, खेल, मनोरंजन आदि। इन्हीं रूपों से उस संस्कृति की पहचान बनती है और उनका विश्लेषण करके उस संस्कृति की जड़ों को पहचाना जा सकता है। इस तरह से अगर आधुनिक भारत के नवधनाढ्य वर्ग उसके पीछे घिसटते मध्यवर्ग की संस्कृति के प्रतिनिधि रूपों की तलाश की जाए, तो वे कुछ इस प्रकार होंगे–इलेक्ट्रॉनिक उपभोक्ता वस्तुएँ, गजलों के कार्यक्रम, एक-दिवसीय क्रिकेट और पिज़ा हैमबर्गर जैसा तुरन्त खाना, जो इस संस्कृति का सबसे महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। बाकी सांस्कृतिक रूपों की तरह भारतीय तुरत-खाना भी भौड़े किस्म का वर्णसंकर है। जाहिर है कि यह खाद्य संस्कृति खूब फूल-फल रही है और समाज में कुपोषण फैला रही है।"

उपर्युक्त गद्यांश के आधार पर निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर अपनी भाषा में दीजिए–

(1) नवधनाढ्य वर्ग और मध्यवर्ग में क्या अन्तर है?
(2) इस अनुच्छेद का शीर्षक लिखिए।
(3) रेखांकित (काले) शब्दों के अर्थ बताइए।
(4) 'खाद्य संस्कृति' और 'तुरत खाना संस्कृति' की व्याख्या कीजिए।

7. "निरन्तर धमकियों के बीच काम करनेवाले की असहज मनःस्थिति की कल्पना की जा सकती है। धमकियाँ झेलनेवाले इस आदमी के पास अपना कोई घर नहीं है, न तो कोई समाज। निजी पारिवारिक इकाई के साथ वह बेशक शहर चला आया है लेकिन उसके सारे स्वजन गाँव में किसी तरह जीने की लड़ाई लड़ते छूट चुके हैं। उत्सव और त्यौहार–जिससे जिन्दगी की स्वाभाविकता जुड़ी है, उसमें शामिल होना लम्बी दूरी के खर्चे तथा छुट्टियों के अभाव के कारण उसके वश का नहीं। इन यातनामय स्थितियों में सिर्फ पेट के लिए नौकरी करनेवाला यह वर्ग समाज से और खुद से अलग-थलग पड़ा हुआ अलगाव के परिणाम को दिन-रात झेल रहा है और समझ नहीं पा रहा है कि आखिर करे तो क्या करे! इस असुरक्षा और अनिश्चय की मनःस्थिति में वह गाँव भी नहीं लौट सकता। वहाँ खत्म होती हुई अपनी पारिवारिक दुनिया को अपने जीने के लिए अपर्याप्त पाकर ही तो उसने उसे छोड़ा था और शहर चला गया था। अब वहाँ की क्या स्थिति होगी, यह कल्पना ही उसे दहशत से भर देती है।"

उपर्युक्त गद्यांश के आधार पर आगे दिए हुए प्रश्नों के उत्तर दीजिए–
(1) इस अनुच्छेद का उपयुक्त शीर्षक सुझाइए।
(2) इस अनुच्छेद का सार अपने शब्दों में लिखिए।
(3) वह आदमी गाँव से शहर क्यों भाग आया था?
(4) शहर के जीवन के विषय में उसने क्या अनुभव किया?

संक्षेपण और पल्लवन

व्युत्पत्ति एवं अर्थ

'संक्षेपण' शब्द अंग्रेजी के 'प्रेसी' (Precis) का हिन्दी अनुवाद है। 'प्रेसी' मूलतः फ्रेंच भाषा के 'प्रेसीड्यूअर' शब्द से निकला है। अँग्रेजी में इस शब्द के भाव को व्यक्त करने वाला शब्द है—प्रिसाइज़ (Precise)। प्रिसाइज़ का अभिप्राय संक्षेप, संक्षिप्त, सार आदि से है। हिन्दी भाषा में यह शब्द संस्कृत के माध्यम से आया। संस्कृत भाषा में 'क्षिप्' धातु में 'सम्' उपसर्ग और 'ल्युट्' प्रत्यय जोड़ दें तो 'संक्षेपण' शब्द की उत्पत्ति होती है। इसका अर्थ हुआ छोटा करना या संक्षिप्त करके प्रस्तुत करना।

महत्त्व और सार्थकता

व्यावसायिक क्षेत्र में 'संक्षेपण' एक पारिभाषिक शब्द के रूप में प्रयुक्त होता है। साथ ही साथ हमारे दैनिक जीवन में भी इसका महत्त्व कम नहीं है। किसी भी विचार, मन्तव्य या अनुभव को विस्तार से प्रस्तुत करना जितना सरल है उतना ही उसे संक्षेप में प्रस्तुत करना कठिन है। संक्षेप में प्रस्तुतिकरण के लिए हमें अपेक्षाकृत अधिक परिश्रम करना पड़ता है। अपनी समस्त विषयवस्तु को समेटना पड़ता है। उसके लिए समासबद्ध भाषा-शैली को अपनाना पड़ता है। यह सब सरल कार्य नहीं है। इसके लिए निरन्तर अभ्यास अनिवार्य है। हम सब कभी न कभी इस प्रकार का अनुभव अवश्य करते हैं कि किसी उपन्यास, कहानी, नाटक या फिल्म की संक्षिप्त कहानी किसी मित्र या अन्य व्यक्ति से सुननी पड़े तो महसूस होगा कि कोई तो थोड़े समय में ही प्रभावशाली ढंग से उसे सुना गया और कोई अधिक समय ले गया तथा समझ में बहुत कम आया। इसी प्रकार किसी भी

प्रशासनिक कार्यालय में अपने से उच्च अधिकारी के समक्ष कार्यालय की दैनिक विभिन्न कार्यवाही को, अथवा किसी विशिष्ट मामले को संक्षेप में प्रस्तुत करना होता है। इसका कारण यह है कि किसी भी उच्च अधिकारी के पास प्रत्येक पत्र, या मामले को विस्तार से पढ़ने या विस्तार से समझने का समय नहीं रहता। यह स्वाभाविक भी है। यदि अधिकारी वर्ग प्रत्येक मामले को विस्तार से स्वयं ही पढ़ने या समझने लगेगा तो कार्यालय के अन्य अनेक कार्य पिछड़ जाएँगे। इसलिए यह आवश्यक होता है कि सम्बद्ध अन्य कर्मचारी वर्ग उन मामलों को संक्षिप्त करके उच्च अधिकारी के पास भेजे। यहाँ भी संक्षेपण की आवश्यकता होती है। संक्षेपण करने वाला अपने प्रतिभा और अभ्यास के बल पर जटिल मामलों पर आवश्यक कार्यवाही शीघ्र करवा सकता है।

हम किसी स्कूल, कॉलेज के अधिकारी वर्ग या अध्यापक वर्ग के पास अपनी प्रशासनिक या शैक्षणिक समस्या लेकर जाते हैं, अथवा किसी अन्य कार्यालय में अपनी कोई समस्या लेकर उपस्थित होते हैं, तब भी हमें अपनी समस्त विषयवस्तु को संक्षिप्त में और प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करना पड़ता है। हमारे प्रस्तुतिकरण पर भी समस्या का शीघ्र या विलम्ब समाधान निर्भर करता है। अस्तु, संक्षेपण-कला का महत्त्व प्रत्येक व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र, प्रत्येक क्रिया-कलाप से जुड़ा हुआ है। इसकी सार्थकता सर्वदा स्वयंसिद्ध है।

परिभाषा

व्यावसायिक क्षेत्र के पारिभाषिक शब्द के रूप में 'संक्षेपण' का अध्ययन यहाँ किया जा रहा है। स्वभावतः इस शब्द की जो परिभाषा और उसका स्वरूप निर्दिष्ट किया गया है उसे भी समझ लेना अपेक्षित है।

"किसी लिखित सामग्री को मूल के लगभग एक-तिहाई भाग में, संक्षिप्त रूप में, सहज भाषा और व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करना 'संक्षेपण' कहलाता है।"

"संक्षेपण उसे कहते हैं जिसमें एक विस्तृत मूल संदर्भ का यथार्थ स्पष्ट, पूर्ण एवं सुसंबद्ध किन्तु संक्षिप्त रूप में (सम्भव हो तो मूल के एक-तिहाई भाग में) तथा सहज भाषा में प्रस्तुत किया गया हो।"

"संक्षेपण से अभिप्राय ऐसी रचना से है जिसमें किसी वक्तव्य, लेख, निबन्ध, अनुच्छेद आदि में व्यक्त किए गए भावों को संक्षेप में प्रस्तुत किया जाता है। यह संक्षिप्त रूप स्वतःपूर्ण, स्पष्ट, तारतम्ययुक्त और प्रभवी होना चाहिए।"

विशेषताएँ

उपर्युक्त सभी परिभाषाओं से कुछ बातें स्पष्ट हो जाती हैं जिनका संक्षेपण करते समय ध्यान रखना चाहिए। इन्हें संक्षेपण के महत्त्वपूर्ण तत्त्व कह सकते हैं। ये तत्त्व ही संक्षेपण के गुण या विशेषताएँ भी हैं।

1. संक्षिप्तता–किसी विषयवस्तु का मूल से संक्षिप्त होना 'संक्षेपण' का आधार स्तम्भ है। प्रायः मान्यता यह है कि संक्षेपण का कलेवर मूल का एक-तिहाई भाग होना चाहिए। किन्तु यह कोई अन्तिम और सर्वथा अनिवार्य नियम नहीं है। अर्थात् 150 शब्दों के अनुच्छेद का संक्षेपण करते समय मात्र 50 शब्दों का निर्देश ही अन्तिम नहीं। 5-10 शब्दों के कम या अधिक हो जाने से संक्षेपण निरर्थक नहीं हो सकता। फिर भी कलेवर का लघु होना अनिवार्य है। यह ध्यान रखना चाहिए। इसके लिए हम मूल अनुच्छेद में प्रस्तुत विभिन्न उदाहरणों, उद्धरणों और पुनरुक्ति वाली बातों को छोड़ सकते हैं।

2. पूर्णता–संक्षिप्तता का यह अर्थ कदापि नहीं है कि मूल अनुच्छेद की कुछ अपेक्षित बातें छूट जाएँ और कुछ आ जाएँ। ध्यान यह रखना पड़ेगा कि मूल के सभी महत्त्वपूर्ण, यथार्थ और उपयोगी तथ्य और सत्य पूर्ण रूप में संक्षेपण के अनिवार्य अंग होंगे। उनमें से यदि कोई छूट जाता है तो संक्षेपण की उपयोगिता समाप्त हो जाती है। वस्तुतः संक्षेपण में न तो अपनी ओर से मूल्यांकन शैली में कुछ टिप्पणी की सम्भावना होती है और न ही निष्कर्ष की शैली में कोई निर्णय देने की। आवश्यकता यहाँ यह है कि प्रस्तुत विषय-सामग्री का नीर-क्षीर विवेकसम्मत पूर्ण रूप संक्षेपण में उभरकर आना चाहिए।

3. सुसम्वद्धता–संक्षेपण की तीसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि जब हम मूल का संक्षिप्त रूप प्रस्तुत करते हैं तो उनकी उपयोगी, यथार्थ, और महत्त्वपूर्ण बातों में पारम्परिक बिखराव नहीं आना चाहिए। उनका आपसी तारतम्य भी बनना चाहिए। संक्षेपण करते समय इस बात का खतरा बना रहता है। हम बीच-बीच में से कुछ-कुछ तथ्य चुनते हैं। तो उनकी सम्बद्धता मूल अनुच्छेद से छिन्न-भिन्न हो जाती है। उनमें दूरान्वय के दोष की सम्भावना रहती है। इन खतरों को दूर करने के लिए हमें संक्षेपण में सभी तथ्यों में एक व्यवस्था स्थापित करनी पड़ती है। कभी-कभी महत्ता के कारण तथ्यों का क्रम भी परिवर्तित करना पड़ता है।

'संक्षेपण' को पढ़ते समय हमें मूल जैसे अनुच्छेद का आस्वाद मिलना चाहिए। संक्षिप्त रूप भी अपने आपमें एक अन्य अनुच्छेद ही होता है। अतः इसमें व्यवस्था का रहना अनिवार्य है। अन्यथा यह केवल कुछ वाक्यों का समूह बनकर रह जाएगा। अनुच्छेद का आस्वाद न दे सकेगा।

4. सहज-स्पष्ट भाषा-शैली—मूल अनुच्छेद की सभी बातों को संक्षेपण में प्रस्तुत करते समय यह भी आवश्यक है कि सभी तथ्य स्पष्ट रूप में उभरने चाहिए। ऐसा न हो कि मूल की सहज स्पष्ट बातें संक्षिप्त रूप में आकर और उलझ गईं या समझ में नहीं आतीं। जिस प्रकार किसी पैराग्राफ में कुछ बातें समझाई गई हैं, उसी प्रकार संक्षेपण में हमें उन बातों को संक्षित रूप से समझाकर लिखना होता है। यहाँ संक्षेपण करने वाले की प्रतिभा और अभ्यास एक बार पुनः उपयोगी सिद्ध होते हैं। उसकी भाषा-शैली, शब्द, चयन, वाक्य-संरचना और प्रस्तुतिकरण सभी का समेकित प्रभाव संक्षेपण की स्पष्ट और सहजता को प्रभावित करता है। आवश्यकता तो इस बात की भी है कि मूल सामग्री को संक्षेपण में आकर सहज और सरल हो जाना चाहिए। दो या अधिक अर्थ वाले द्वयर्थक शब्दों को नहीं चुनना चाहिए। शैली सरल और सर्वजन-सहज होनी चाहिए ताकि उसका अपेक्षित प्रभाव पड़ सके। उनमें कुछ अधूरा-सा या उलझा-सा न लगे। संक्षेपण की भाषा में अन्य पुरुष का प्रयोग होना चाहिए।

संक्षेपण और अन्य निकटस्थ रूप

यहाँ एक बात और भी समझनी चाहिए कि 'संक्षेपण' शब्द के समान लगने वाले अंग्रेजी में और हिन्दी भाषा में अनेक शब्द हैं जैसे सारांश, भावार्थ, निष्कर्ष, उपसंहार आदि। किन्तु ध्यातव्य यह है कि संक्षेपण का पारिभाषिक अर्थ इनसे भिन्न है। यद्यपि इनकी कुछ-कुछ अर्थ-छवियाँ संक्षेपण में भी मिलेंगी। जैसे 'संक्षेपण' और 'सारांश' प्रायः एक ही अर्थ देते हैं। पर्यायवाची लगते हैं किन्तु संक्षेपण को मूल का लगभग एक-तिहाई होना चाहिए जबकि सारांश के लिए ऐसी कोई रूढ़ि नहीं है। जैसे यदि आज के टी.वी. या रेडियो के किसी 'समाचार बुलेटिन' का सारांश कोई अनजान व्यक्ति पूछ ले तो पूछ शीर्षक गिनाकर भी उसका सारांश बताया जा सकता है और उनका विस्तार करके भी। किन्तु संक्षेपण में सभी महत्त्वपूर्ण समाचारों को क्रमशः ब्यौरेवार संक्षेपण के नियम में बँधकर बताना अनिवार्य है।

इसी प्रकार भावार्थ भी एक-दो शब्द या एक-दो वाक्य में दिया जा सकता है। भावार्थ में कभी-कभी स्वयं मूल्यांकन का भी संकेत रह सकता है। किन्तु संक्षेपण में नहीं। निष्कर्ष या उपसंहार भी संक्षिप्त तो होते हैं और मूल्यांकन की विशेषताएँ समेटे रहते हैं किन्तु संक्षेपण में इसकी गुंजाइश नहीं है। किसी अनुच्छेद को पढ़कर यदि उसका संक्षेपण करना पड़े और निष्कर्ष देना पड़े तो—निष्कर्ष में हम यह कह सकते हैं कि यह अनुच्छेद अच्छा लगा अथवा निरर्थक। बेकार

लगा। और हमारा कार्य समाप्त। परन्तु संक्षेपण में ऐसा नहीं हो सकता। उसमें तो जैसा भी है, जो भी है उसकी मूल बातों को निकालकर किसी-न-किसी व्यवस्था में प्रस्तुत करना पड़ता है। स्पष्ट है कि संक्षेपण अपना निश्चित और भिन्न कार्य-क्षेत्र रखता है। अन्य समान शब्दों से यह पर्याप्त भिन्न है।

संक्षेपण की विधि

संक्षेपण एक कला है। यह सामान्यतः मूल-अनुच्छेद का एक-तिहाई रूप होता है। इतनी बात स्पष्ट हो चुकी है। यदि हमें किसी प्रस्तुत विषय-सामग्री का संक्षेपण करना पड़े तो उसके लिए विभिन्न नियमों की जानकारी होनी चाहिए। प्रायः इस रचना-प्रक्रिया का उपयोग करने से हम एक अच्छे संक्षेपणकार बन सकते हैं–

1. दिए हुए उद्धरण को ध्यान से दो-तीन बार या तब तक पढ़ना चाहिए जब तक उस अवतरण का मूल भाव, मूल प्रतिपाद्य भली-भाँति स्पष्ट न हो जाए। पहले या दूसरे पाठ के पश्चात् महत्त्वपूर्ण शब्दों को रेखांकित करने जाना चाहिए। इसका लाभ यह होगा कि फिर पढ़ने पर सभी महत्त्वपूर्ण तथ्य जैसे–तिथियाँ, व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ, विशेषण, आँकड़े पारिभाषिक शब्द आदि को सरलता से ध्यान में रखा जा सके।

2. बार-बार पढ़ने की प्रक्रिया में उस अनुच्छेद का शीर्षक भी चुनना चाहिए। कभी-कभी उपयुक्त शीर्षक की खोज करने से मूल-भाव को समझने में भी सुविधा होती है और यदि मूल प्रतिपाद्य स्पष्ट हो जाता है तो शीर्षक का चुनाव सहजता से हो सकता है। ये दोनों एक-दूसरे के अनुपूरक हैं। शीर्षक छोटा और मूल प्रतिपाद्य को पूर्णतः व्यक्त करने वाला कोई शब्द या पदबंध होना चाहिए। वाक्य या वाक्यांश को शीर्षक बनाने से बचना चाहिए।

3. गद्यांश के सभी महत्त्वपूर्ण तथ्य तो रेखांकित कर लेने चाहिए किन्तु किसी भाव-विशेष को स्पष्ट करने वाले उदाहरण, उद्धरण अथवा कथांश को छोड़ देना चाहिए। कभी-कभी किसी सूत्र वाक्य को समझाने के लिए कई प्रकार की पुनरुक्तियाँ की जाती हैं, उन्हें भी छोड़ देना चाहिए या किसी एक सर्वश्रेष्ठ को चुन लेना चाहिए।

4. मूल गद्यांश में चुनी हुई रेखांकित सामग्री को अब एक अन्य जगह उतार लेना चाहिए। उनमें आपसी तारतम्य बैठाना चाहिए। उसके तथ्यों के लिए सरल वाक्य बनाने चाहिए। प्रायः हम मूल सामग्री के उन चुने हुए वाक्य या वाक्यांशों को ज्यों का त्यों रख देते हैं और समझ लेते हैं कि संक्षेपण ठीक हो

गया। यह बहुत बड़ा भ्रम है। जब हम कुछ-कुछ तथ्यों को किसी पैराग्राफ से चुनते हैं तो तथ्यों और वाक्यों का तारतम्य टूट जाता है। इसलिए उनमें व्यवस्था बनाकर अपनी भाषा में उन्हें पुनः प्रस्तुत करना चाहिए।

5. मूल उद्धरण में जो विचार संक्षिप्त या सूत्र रूप में अभिव्यक्त किए गए हों, उनकी व्याख्या नहीं करनी चाहिए।

6. संक्षेपण में मुहावरे, लोकोक्तियों, आलंकारिक भाषा और द्वयर्थक शब्दों के चुनाव से बचना चाहिए। इससे संक्षेपण के दुरूह होने का खतरा बना रहता है।

7. इसके बाद उन सभी तथ्यों को लेकर सहज, स्पष्ट अन्य पुरुष की भाषा का प्रयोग करते हुए अन्तिम रूप में लिखना चाहिए। भाषा, वाक्य-संरचना संक्षेपणकार की अपनी होनी चाहिए।

8. पुनरीक्षण करना संक्षेपण-विधि का अन्तिम और महत्त्वपूर्ण सोपान है। इसका अर्थ है अपने द्वारा प्रस्तुत विषय-सामग्री की उपयुक्तता का मूल्यांकन करना। हमें उस संक्षेपण को एक बार पढ़ना चाहिए और यह पता लगाना चाहिए कि यह अनुच्छेद की परिभाषा के अन्तर्गत आता है या कोरा वाक्यों का समूह बनकर रह गया है। इसके वाक्य या वाक्यांशों में दूरान्वय दोष तो नहीं रह गया। कम महत्त्वपूर्ण बात पहले और अधिक महत्त्वपूर्ण बात बाद में तो नहीं आई। सभी महत्त्वपूर्ण तथ्य, जानकारियों का समावेश हो गया है या किसी कारणवश कोई छूट गई है आदि। यदि ऐसा है तो उसे समाविष्ट कर लेना चाहिए।

संक्षेपण के भेद

संक्षेपण प्रायः दो प्रकार का होता है—1. धाराप्रवाह संक्षेपण, 2. सारिणी संक्षेपण। अभी तक हमने धाराप्रवाह संक्षेपण की बात की है।

सारिणी संक्षेपण में प्रायः कार्यालयों में प्राप्त होने वाले आवेदन-पत्रों या अन्य अनेक प्रकार के पत्रों की विषय-वस्तु का संक्षेपण एक तथ्यात्मक सारिणी तालिका बनाकर प्रस्तुत किया जाता है। जैसे तालिका के शीर्षक होंगे। क्रमांक/पत्र प्राप्ति की तिथि/पत्र की दिनांक/प्रेषक/प्राप्तकर्त्ता/संदर्भ/विषयवस्तु/आदि। इसी क्रम में 1,2,3,...। सभी पत्रों का एक संक्षिप्त रूप हमारे सामने तैयार हो जाता है।

संक्षेपण के उदाहरण

1

अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में भारतीय उद्योग, विदेशी उद्योगों से टक्कर लेने की क्षमता कैसे पैदा करें? यह एक बहुत बड़ी चुनौती है। शुरू-शुरू में देश के अर्थ-तन्त्र में मूल क्षेत्र के उद्योगों की स्थापना में सरकार ने मुख्य उद्यमी की महत्त्वपूर्ण भूमिका निबाही। राष्ट्रहित में आधारभूत उद्योगों की आवश्यकता को समझते हुए बहुत से उद्योगों को अनेक प्रकार से संरक्षण प्रदान किया और देश-विदेश के प्रतिद्वन्द्वी उद्योगों द्वारा मुकाबले की चोट से बचाने की हरचंद कोशिश की गई। पिछले तीन दशकों में कुछ महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में कई उद्योगों ने काफ़ी उन्नति की है। इलैक्ट्रॉनिक्स एवं बायोटैक्नोलॉजी आदि के क्षेत्र में नव्यतम उद्योगों के आगमन पर नज़र दौड़ाई जाए तो राष्ट्र की विकास-यात्रा से प्रभावित हुए बिना नहीं रहा जाता।

उत्तर–1

शीर्षक : भारतीय उद्योग की चुनौती

संक्षेपण

भारतीय उद्योग को विश्व-बाजार में टिकने के लिए कड़ी चुनौती का सामना करना पड़ रहा है। आरम्भ में सरकार ने राष्ट्रहित में आधारभूत उद्योगों की कई प्रकार से सहायता की, उसे प्रोत्साहन दिया। परिणामस्वरूप अनेक उद्योग उन्नत भी हुए। विद्युत-उत्पादन के क्षेत्र में भारतीय उद्योग की प्रगति विशेष सराहनीय है।

2

मानव समाज की जटिल समस्याओं का निदान जानकर राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक आदि विभिन्न स्तर पर उनका समाधान खोजने वाले दूरदर्शी नेता हर काल और हर देश में जन्म लेते रहे हैं। परन्तु मानवसमाज की समग्र प्रगति एवं सर्वांगीण विकास के लिए भौतिक पक्ष के साथ-साथ आध्यात्मिक तथा साहित्यिक पक्ष को सुदृढ़ करने की ओर प्रायः किसी का ध्यान नहीं गया। इस दृष्टि से गुरु गोविन्द सिंह की देन अभूतपूर्व तथा अद्वितीय कही जा सकती है। वे मूल रूप में सन्त थे, गुरुनानक देव के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी। धर्म और दर्शन

में उनकी गहरी पैठ थी। एक अकाल पुरुष के परम भक्त, सिद्ध, धर्माचार्य होने के साथ-साथ वे परम वीर, निर्भय यौद्धा, कुशल सेनानी तथा दूरदर्शी राजनीतिक नेता भी थे, किन्तु भक्ति और शक्ति की यमुना-गंगा में साहित्य की सरस्वती को मिलाकर गुरु गोविन्द ने विश्व के इतिहास में सर्वथा एक नया अध्याय जोड़ दिया।

उत्तर–2

शीर्षक : गुरु गोविन्दसिंह की देन

संक्षेपण

मानव-समाज की विभिन्न समस्याओं को सुलझाने के लिए हर युग में अनेक विचारक होते रहे हैं, परन्तु उनका क्षेत्र प्रायः आर्थिक, सामाजिक या राजनीतिक ही रहा। गुरु गोविन्दसिंह ने मनुष्य-जीवन के आन्तरिक और बाह्य पक्ष के समन्वित विकास के साथ-साथ साहित्य और संस्कृति को भी महत्त्व दिया। गुरु गोविन्दसिंह के रूप में हमें भक्ति, शक्ति और सरस्वती के पवित्र संगम का साक्षात्कार होता है।

शब्दार्थ : जटिल–उलझनपूर्ण। निदान–कारण। समग्र–सभी प्रकार से। सर्वांगीण–सभी पहलुओं से। भौतिक–केवल शारीरिक। अद्वितीय–अनोखी। पैठ–पहुँच, जानकारी, योग्यता।

3

वेद भारतीय ज्ञान चिन्तन और मनन का आदि मानसरोवर है। उनमें ईश्वरीय चिन्तन का अपौरुषेय रूप विद्यमान है। प्रकृति के नानारूपों की अर्चना और वन्दना है। मानवतावादी जीवन मूल्यों की व्याख्या है। मानव-मंगल की प्रार्थनाएँ हैं। लोक कल्याण के स्रोत हैं। जन-जन के हित का गायत्री-गायन है। समस्त प्राणी मात्र के अभ्युदय की ऋचाएँ हैं। वेद समर्पित हैं लोक-कल्याण को, लोक-मंगल को, लोक-हित को, सर्वत्र शुभ हो!! सर्व मंगल हो!! सर्व कल्याण हो!! सर्व सुन्दर हो!! समस्त पवित्र हो!! सम्पूर्ण शुचि हो!! सभी स्वस्थ हों!! सभी योग-क्षेम से पूर्ण हों!! सभी का कुशल हो!! सब समान हैं! सब एक प्राण चेतना से गतिमान हैं। सभी में एक ही ईश्वर का दिव्य रूप है! सभी ईश्वर-पुत्र हैं! सभी उसी की अमृत सन्तान हैं! वेद मानव-मानव की आधारभूत समानता पर मानव-कल्याण का शंखनाद करते हैं। भारत का सम्पूर्ण चिन्तन इसी मानसरोवर से विविध स्रोतों

और निर्झरों के रूप में फूटता है। ज्ञान की असंख्य धाराएँ इसी महान् और प्राचीनतम मानसरोवर से बहती आई हैं।

उत्तर–3

शीर्षक : वैदिक वाङ्मय और मानव-कल्याण

संक्षेपण

समस्त भारतीय विचारधारा और श्रेष्ठ ज्ञान का स्रोत वैदिक वाङ्मय है। वेदों में ईश्वर और प्रकृति की उपासना के साथ-साथ मानव-मात्र के विकास की भी मंगल-कामना की वृद्धि है। हर प्रकार से स्वस्थ, उन्नत और समृद्ध मानव-जीवन ही वेदों का प्रतिपाद्य है। भारत के सभी धर्म-दर्शन आदि वेदों में इसी सन्देश का ही विस्तार है।

शब्दार्थ : अपौरुषेय–दैवी, आध्यात्मिक। अभ्युदय–समुचित विकास। शुचि–शुद्ध।

संक्षेपण के अभ्यास के लिए कुछ अनुच्छेद

निम्नलिखित अनुच्छेदों का संक्षेपण कीजिए और उनके उपयुक्त शीर्षक बताइए–

1. राष्ट्र-चेतना का प्रवाह अविरल है। हिमगिरि से उद्भुत गंगा जिस प्रकार अनेक पथ पार कर और अनेक रूप धारण कर भारत में विभिन्न क्षेत्रों को प्लावित करती है, अपनी पावनता से समस्त भारतीय जन को नाना रूपों से तृप्त करती है; उसी प्रकार, उसी उत्तुंग हिमगिरि की गुफा-कन्दराओं में साधनालीन चिन्तकों की राष्ट्र-परिकल्पना भारत के जन-मानस को विभिन्न रूपों और विभिन्न माध्यमों से सम्पृक्त करती रही है। गंगा एक है, उसके नाम अनेक हैं। कहीं वह मन्दाकिनी है तो कहीं भागीरथी; कहीं हुगली है तो कहीं ब्रह्मपुत्र; मूल धारा वही है, पावन जल की शीतलता और सिंचन-पालन-क्षमता वही है। भारत का कोई स्थान हो, कोई प्रदेश, कोई जाति, कोई कबीला, कोई ग्राम, कोई नगर हो, वह स्वतः प्रवाहित गति से सबका समान रूप से मातृवत् पोषण करती हुई अविरत-अविराम चलती रहती है। उसके पथ का हर पड़ाव एक तीर्थ है; उसके दोनों ओर फैली धरती का हर कण एक विलक्षण गरिमा के संस्पर्श से दिव्य है। यही विलक्षणता, यही दिव्यता, यही पावनता, जन्मभूमि के प्रति यही मातृभावना भारत राष्ट्र-चेतना की मूल धुरी है।

2. समस्त भारतीय साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता उसके मूल में स्थित **समन्वय** की भावना है। उसकी यह विशेषता इतनी **प्रमुख** तथा मार्मिक है कि केवल इसी के बल पर संसार के अन्य साहित्यों के **सामने** वह अपनी मौलिकता की **पताका** फहरा सकती है और अपने स्वतन्त्र **अस्तित्व** की **सार्थकता** प्रमाणित कर सकती है। जिस प्रकार **धार्मिक क्षेत्र** में भारत के ज्ञान, भक्ति तथा कर्म के **समन्वय** की प्रसिद्धि है तथा जिस प्रकार वर्ण एवं आश्रम-चतुष्ट्य के **निरूपण** द्वारा इस देश में सामाजिक समन्वय का सफल प्रयास हुआ है, ठीक उसी प्रकार साहित्य तथा अन्यान्य कलाओं में भी भारतीय प्रवृत्ति समन्वय की ओर रही है! साहित्यिक समन्वय से हमारा **तात्पर्य** साहित्य में **प्रदर्शित** सुख-दुःख, **उत्थान-पतन, हर्ष-विषाद** आदि **विरोधी** तथा **विपरीत** भावों के **समीकरण** तथा एक लौकिक आनन्द में उसके **विलीन** होने से है।

3. लोभ बहुत बुरा है। वह मनुष्य का जीवन दुःखमय कर देता है; क्योंकि अधिक धनी होने से कोई सुखी नहीं होता। धन देने से सुख नहीं मोल मिलता। इसलिए जो मनुष्य सोने और चाँदी के ढेर ही को सब-कुछ समझता है, वह मूर्ख है। मूर्ख नहीं, तो वह वृथा अहंकारी अवश्य है। जो बहुत धनवान है, वह यदि बहुत बुद्धिमान और बहुत योग्य भी होता तो हम धन ही को सब-कुछ समझते। परन्तु ऐसा नहीं है। धनी मनुष्य सबसे अधिक बुद्धिमान होते। इसलिए धन को विशेष आदर की दृष्टि से देखना भूल है; क्योंकि उससे सच्चा सुख नहीं मिलता। इस देश के पहुँचे हुए विद्वानों ने धन को सदा तुच्छ माना है। यह बात आजकल के समय के अनुकूल नहीं। यूरोप और अमेरिका के ज्ञानी धन ही को बल—बल नहीं, सर्वस्व समझते हैं। परन्तु जिस धन के कारण अनेक अनर्थ होते हैं, उस धन को प्रधानता कैसे दी जा सकती है? और देशों में उसे भले ही प्रधानता दी जाए, परन्तु भारतवर्ष में उसे प्रधानता मिलना कठिन है। जिस देश के निवासी संसार ही को मायामय, अतए दुःख का मूल कारण समझते हैं, वे धन को कदापि सुख का हेतु नहीं मान सकते।

4. यह एक सामान्य मान्यता है कि तीसरी दुनिया के देशों में मौसम का पूर्वानुमान न होने के कारण अचानक सूखे, बाढ़ या अन्य प्राकृतिक आपदा से लोगों को भूखा मरना पड़ता है। लेकिन वास्तविकता यह है कि तीसरी दुनिया में खाद्यान्न-उत्पादन के लिए मौसम बहुत अच्छा है। मौसम से लड़ने के लिए तीसरी दुनिया के किसानों ने सदियों के अनुभव से नई तकनीकें विकसित की हैं। लेकिन नियमित प्राकृतिक आपदाओं के लिए कोई व्यवस्था नहीं है। इसीलिए

इनसे सक्षम लोग उतना प्रभावित नहीं होते जितना कि साधनहीन गरीब आदमी। अतः लोग अपनी साधनहीनता के कारण भूख से मरते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि गरीबी की समस्या जनसंख्या से जुड़ी है लेकिन यह भी सच है कि आज दुनिया में खाद्यान्न-उत्पादन प्रत्येक के पेट भरने की क्षमता से अधिक है।

5. पेट्रोल पम्पों में सूखा तो नहीं ही पड़ेगा। मध्य-पूर्व के रेगिस्तान रक्त-रंजित हो जाएँ, तब भी नहीं। विश्व में कच्चे तेल के उत्पादन को आसानी से बढ़ाया जा सकता है लेकिन तेल की कीमतें अस्वाभाविक रूप से ऊँची जरूर जा सकती हैं। वर्तमान संकट तो मात्र किसी अनचाहे अतिथि की तरह है। इसे तेल संकट का तीसरा झटका भर कह सकते हैं और वह भी उम्मीद से कुछ पहले आ लगा है। दशकों से ऊर्जा विशेषज्ञ दलीलें देते रहे हैं कि भारत में पेट्रोलियम के सहारे विकास की जो राह चुनी, उस पर वह चल नहीं सकता। तेल खपत घटाने के लिए भारत में बहुत कम कदम उठाए गए। इसके विपरीत मुम्बई हाई में तेल की खोज से देश में एक हद तक चैन का भाव आ गया।

पल्लवन

'पल्लवन' मूल शब्द 'पल्लव' से बना है। इसका अर्थ है पत्ता। पल्लव अपने मूल रूप में ऐसा नहीं था। इसका मूल रूप था—बीज। बीज से पत्ते तक की प्रक्रिया को हम इस प्रकार भी समझ सकते हैं—

बीज
↓ —मिट्टी, पानी, खाद
अंकुर
↓
तना+पल्लव

अर्थात् सबसे पहले कोई बीज मिट्टी में बोया जाता है। खाद और पानी देने से वह अंकुरित होता है। इसके बाद उसमें तना और पत्ते विकसित होते हैं। ठीक यही प्रक्रिया 'पल्लवन' में भी निहित है। 'पल्लवन' शब्द अंग्रेजी के Expansion का हिन्दी प्रतिशब्द है। उसका अर्थ है—विस्तार। 'पल्लवन' एक प्रकार की गद्य-रचना है, जिसमें किसी विचार या विषय का विस्तार मिलता है। किसी प्रबुद्ध सामाजिक प्राणी को किसी विषय पर अपने विचार व्यक्त करने के लिए जब अवसर मिलता तब वह अपनी सामर्थ्य और समय के अनुसार उसका मौखिक या लिखित गद्य रूप प्रस्तुत करता है। स्पष्ट है कि वह प्रस्तुति किसी विक्षिप्तावस्था

करना अति आवश्यक है। प्रायः पल्लवन को निबन्ध ही मान लिया जाता है। ऐसा करना बिल्कुल गलत है। निबन्ध में भी यद्यपि किसी विचार-बिन्दु का विस्तार कल्पना, प्रतिभा और मौलिकता के आधार पर किया जाता है किन्तु उसका उद्देश्य भिन्न है। पल्लवन में विषय का विस्तार भी एक निश्चित सीमा के अन्तर्गत किया जाता है। निबन्ध में यह सीमा प्रायः नहीं रहती। अर्थात् कलेवर की दृष्टि से दोनों भिन्न हैं। यद्यपि दोनों की रचना-प्रक्रिया समान है। दूसरी बात उद्देश्य की है। निबन्ध से अपेक्षा की जाती है कि किसी विषय की विभिन्न दिशा-संकेतों के माध्यम से विस्तृत और विश्लेषित जानकारी मिल सकेगी। किसी विचार-बिन्दु का सूत्रपात करके उसका विवेचन-विश्लेषण का पूर्ण विकास किया जाएगा। इसके ठीक विपरीत पल्लवन में यह विकास अत्यन्त त्वरित और सारगर्भित होता है। 'विषय' के सभी पहलुओं का उद्‌घाटन और विवेचन पल्लवन में सम्भव नहीं होता। पल्लवन जब एक या डेढ़ पृष्ठ से अधिक होने लगता है तब समस्त विचार-बिन्दुओं में बिखराव आने का सन्देह रहता है। पल्लवन से अपेक्षा की जाती है कि लेखक अपेक्षित विषय पर अपने विचार, विवेचन-विश्लेषण, उदाहरण—दृष्टान्त आदि सभी का उपयोग समास प्रधान शैली में करेगा, तीसरी बात विषय की है। किसी भी विषय या संकेत बिन्दु पर निवन्ध तो लिखा जा सकता है किन्तु उन सभी का पल्लवन करना कभी-कभी कठिन हो जाता है। पल्लवन के लिए विषय ऐसे होने चाहिए जिनमें बहुत विस्तार की गुंजाइश न हो। शास्त्रीय सूत्र, वैज्ञानिक समीकरण या प्रौद्योगिकी सरणियों पर पल्लवन करना प्रायः कठिन होता है। इन्हें किसी निबन्ध में ही प्रायः समझाया जा सकता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि पल्लवन और निबन्ध में सतही तौर पर साम्य होते हुए भी अन्तर बहुत अधिक है।

विशेषताएँ—पल्लवन की विभिन्न परिभाषाओं का अध्ययन और निबन्ध से अन्तर स्पष्ट हो जाने के पश्चात् इसकी विशेषताओं का विश्लेषण अपेक्षित है।

उपर्युक्त विवेचन में जिन विशेषताओं को प्रस्तुत किया गया है, वे इस प्रकार हैं—

(1) गद्यात्मक रचना, (2) सर्जनात्मकता, (3) केन्द्रोन्मुखता, (4) मौलिकता, (5) कल्पनात्मकता, (6) प्रवाहमयता, (7) उन्मुक्ता, (8) सहजता, (9) उक्ति-वैचित्र्य, (10) शब्द-चयन, (11) भाषा-लालित्य आदि।

1. गद्यात्मक रचना—किसी 'विषय' पर वैसे तो गद्य-पद्य में विस्तार किया जा सकता है। वर्षों पूर्व हिन्दी में समस्यापूर्ति के रूप में काव्य-रचना होती रही है। किन्तु पल्लवन के लिए प्रायः निश्चित है कि इसमें भाषानुभूति को गद्य में

का प्रलाप नहीं होती। इसके द्वारा हम उसके मानसिक विकास, विचारधारा, कल्पना-शक्ति, मौलिक उद्भावनाओं की क्षमता और भाषा लालित्य से परिचित होते हैं। इस गद्य-रचना के अध्ययन-मूल्यांकन द्वारा उसकी समालोचना की जाती है। श्रेष्ठ-अश्रेष्ठ बताकर साहित्य में उसका स्थान निर्धारित किया जाता है। 'पल्लवन' में दक्षता प्राप्त करने के लिए प्रतिभा और निरन्तर अभ्यास की आवश्यकता पड़ती है। 'पल्लवन' का वास्तविक स्वरूप क्या है, इसकी रचना-प्रक्रिया से क्या अभिप्राय है? इन बातों का विवेचन यहाँ अपेक्षित है।

परिभाषा और स्वरूप

'पल्लवन' की सर्वमान्य परिभाषा उपलब्ध है—ऐसा नहीं कहा जा सकता। इसका कारण यह है कि इस सर्जनात्मक गद्य-रूप के विषय में किसी शास्त्रीय या परम्परागत रूढ़ि का आग्रह नहीं मिलता। फिर भी विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने शब्दों में इसकी परिभाषाएँ की हैं जिनसे हम 'पल्लवन' के अर्थ और स्वरूप को समझ सकते हैं—

एक निश्चित विषय अथवा विवेच्य-बिन्दु या कथ्य से सम्बद्ध विचार एवं भाव को अपने ज्ञान, स्वानुभूति और कल्पना के सहारे विस्तृत कर सुललित प्रवाहमयी उन्मुक्त शैली के माध्यम से गद्य में अभिव्यक्त करना 'पल्लवन' कहलाता है।

जिस प्रकार खेती या बागवानी के समय पहले बीज बोते हैं और फिर यह अंकुरित एवं पल्लवित होता है, उसी प्रकार जब हम किसी विषय रूपी बीज को विस्तार देना शुरू करते हैं तब पल्लवित करना कहते हैं।

पल्लवन भी निबन्ध जैसी एक गद्य रचना है जिसमें किसी निर्धारित विषय का विस्तृत विवेचन मिलता है। किन्तु निबन्ध और पल्लवन उद्देश्य, कलेवर और उक्ति-वैचित्र्य की दृष्टि से पर्याप्त भिन्न भी हैं।

उपर्युक्त परिभाषाओं से 'पल्लवन' के स्वरूप को समझने में पर्याप्त सहायता मिलती है किन्तु इन्हें सर्वश्रेष्ठ और अन्तिम नहीं कहा जा सकता। इनके प्रकाश में हम एक अन्य परिभाषा इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं—

पल्लवन एक प्रकार की सर्जनात्मक गद्य-रचना है। इसमें किसी सूत्र, उक्ति, विषय या विचार-बिन्दु का कल्पना के सहारे, मौलिक, उक्ति-वैचित्र्यपूर्ण, उन्मुक्त, सारगर्भित विस्तार प्रवाहमयी सहज भाषा-शैली में किया जाता है।

पल्लवन और निबन्ध के पारस्परिक साम्य—वैषम्य के विषय में विवेचन

करना अति आवश्यक है। प्रायः पल्लवन को निबन्ध ही मान लिया जाता है। ऐसा करना बिल्कुल गलत है। निबन्ध में भी यद्यपि किसी विचार-बिन्दु का विस्तार कल्पना, प्रतिभा और मौलिकता के आधार पर किया जाता है किन्तु उसका उद्देश्य भिन्न है। पल्लवन में विषय का विस्तार भी एक निश्चित सीमा के अन्तर्गत किया जाता है। निबन्ध में यह सीमा प्रायः नहीं रहती। अर्थात् कलेवर की दृष्टि से दोनों भिन्न हैं। यद्यपि दोनों की रचना-प्रक्रिया समान है। दूसरी बात उद्देश्य की है। निबन्ध से अपेक्षा की जाती है कि किसी विषय की विभिन्न दिशा-संकेतों के माध्यम से विस्तृत और विश्लेषित जानकारी मिल सकेगी। किसी विचार-बिन्दु का सूत्रपात करके उसका विवेचन-विश्लेषण का पूर्ण विकास किया जाएगा। इसके ठीक विपरीत पल्लवन में यह विकास अत्यन्त त्वरित और सारगर्भित होता है। 'विषय' के सभी पहलुओं का उद्घाटन और विवेचन पल्लवन में सम्भव नहीं होता। पल्लवन जब एक या डेढ़ पृष्ठ से अधिक होने लगता है तब समस्त विचार-बिन्दुओं में बिखराव आने का सन्देह रहता है। पल्लवन से अपेक्षा की जाती है कि लेखक अपेक्षित विषय पर अपने विचार, विवेचन-विश्लेषण, उदाहरण—दृष्टान्त आदि सभी का उपयोग समास प्रधान शैली में करेगा, तीसरी बात विषय की है। किसी भी विषय या संकेत बिन्दु पर निबन्ध तो लिखा जा सकता है किन्तु उन सभी का पल्लवन करना कभी-कभी कठिन हो जाता है। पल्लवन के लिए विषय ऐसे होने चाहिए जिनमें बहुत विस्तार की गुंजाइश न हो। शास्त्रीय सूत्र, वैज्ञानिक समीकरण या प्रौद्योगिकी सरणियों पर पल्लवन करना प्रायः कठिन होता है। इन्हें किसी निबन्ध में ही प्रायः समझाया जा सकता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि पल्लवन और निबन्ध में सतही तौर पर साम्य होते हुए भी अन्तर बहुत अधिक है।

विशेषताएँ—पल्लवन की विभिन्न परिभाषाओं का अध्ययन और निबन्ध से अन्तर स्पष्ट हो जाने के पश्चात् इसकी विशेषताओं का विश्लेषण अपेक्षित है।

उपर्युक्त विवेचन में जिन विशेषताओं को प्रस्तुत किया गया है, वे इस प्रकार हैं—

(1) गद्यात्मक रचना, (2) सर्जनात्मकता, (3) केन्द्रोन्मुखता, (4) मौलिकता, (5) कल्पनात्मकता, (6) प्रवाहमयता, (7) उन्मुक्ता, (8) सहजता, (9) उक्ति-वैचित्र्य, (10) शब्द-चयन, (11) भाषा-लालित्य आदि।

1. गद्यात्मक रचना—किसी 'विषय' पर वैसे तो गद्य-पद्य में विस्तार किया जा सकता है। वर्षों पूर्व हिन्दी में समस्यापूर्ति के रूप में काव्य-रचना होती रही है। किन्तु पल्लवन के लिए प्रायः निश्चित है कि इसमें भाषानुभूति को गद्य में

प्रकट किया जाएगा। विचारों का तर्कपूर्ण विवेचन-विश्लेषण गद्य में ही किया जा सकता है। कविता में इसकी गुंजाइश नहीं है। यही कारण है कि प्राचीनकाल में किसी सूत्र या कारिका के भाष्य या व्याख्यान-विश्लेषण के लिए प्रायः गद्य को चुना जाता था। पल्लवन में विषय के चुनाव के पश्चात् उनके सूत्रों को सँजोकर व्यंजनात्मक रूप में विकास अपेक्षित रहता है। लेखक अपनी रुचि, मेधा और अवसर के अनुकूल किसी विषय का विस्तार प्रस्तुत करता है। यह गद्य-रचना पर्याप्त विस्तृत नहीं होती। एक सीमा में रहकर ही अपने विचारों को प्रस्तुत करना पड़ता है। अन्यथा निबन्धात्मकता आने का खतरा रहता है।

2. सर्जनात्मकता–अन्य साहित्य-रूपों के समान सर्जना-पूर्ण पल्लवन भी विधा है। यदि किसी पल्लवन को पढ़कर लगे कि इसमें तो कुछ वाक्य या उक्तियाँ चिपकाई गई हैं, या कतरनों को जोड़कर कुछ प्रस्तुत किया है। तो उसे पल्लवन की संज्ञा नहीं दी जा सकती। किसी विषय पर प्रस्तुत किए गए लेखक-विचार उसकी वैयक्तिक सृजनशीलता का परिणाम होने चाहिए। अन्यथा उनमें बिखराव, कृत्रिमता और अस्पष्टता आ जाएगी। सृजनशीलता के लिए प्रतिभा और अभ्यास अनिवार्य है। जब हम एक ही विषय पर विभिन्न व्यक्तियों से एक साथ, एक ही समय में पल्लवन करवाते हैं तो सभी की प्रस्तुति भिन्न-भिन्न होगी। उनमें विषय प्रतिपादन, दृष्टिकोण, विज़न, वैचारिकता एवं व्यंजनात्मकता आदि के स्तर पर यह भिन्नता मिलेगी। परिणामतः सभी का सृजनात्मक रूप भिन्न-भिन्न आस्वाद दे सकेगा।

3. केन्द्रोन्मुखता–सृजनशील व्यक्ति पल्लवन करते समय विषय को विभिन्न आयामों से समझने-समझाने लगता है। कभी-कभी मूल विषय से दूर भी हट जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि हम पल्लवन के मूल उद्देश्य से भटक जाते हैं। वैसे भी अपने विचार व्यक्त करते समय हमें विषय-क्षेत्र की सीमा में रहना चाहिए। विषय से भटके और अप्रासंगिक हुए। पल्लवन की यह महत्त्वपूर्ण विशेषता है कि लेखक को निर्दिष्ट विषय के केन्द्र में रहना चाहिए। इसका कारण यह भी है कि पल्लवन में निर्द्वन्द्व विस्तार का अवसर नहीं होता। हमें अपने पक्ष को सारगर्भित रूप में प्रस्तुत करना पड़ता है। यदि हमारा ध्यान मूल विषय पर केन्द्रित नहीं रहेगा तो पल्लवन निरर्थक होने लगेगा। विवेचन में बिखराव आ जाएगा। अतः सृजन-शक्ति को मुख्य विषय पर केन्द्रित करना चाहिए।

4. मौलिकता–मौलिकता का अभिप्राय है–नवीनता। अर्थात् किसी विषय पर अब तक उपलब्ध भावानुभूति, विचार और प्रस्तुतिकरण की दृष्टि में जब कोई

लेखन नवीनता लाता है तो उसे मौलिकता कहा जाएगा। सृजनात्मकता की प्रथम अपेक्षा मौलिकता में है। कोई भी कलात्मक-सृजन मौलिक होगा। यदि वह मौलिक नहीं है तो उसमें सृजनात्मकता का अभाव है, वह नकल भी हो सकती है। मौलिकता में व्यक्ति का निजी अनुभव, दृष्टिकोण और विश्लेषण प्रकट होता है। मौलिक रचना ही रसास्वाद प्रदान कर सकती है। पल्लवन का एक गुण उसका मौलिक होना भी है क्योंकि यह एक सृजनशील गद्य-रूप है। अतः इसमें लेखक का निजी वैशिष्ट्य मिलना चाहिए। किसी विषय का पल्लवन करते समय हमें उस विषय में प्राप्त समस्त भाव-विचारों को निजी रूप में प्रस्तुत करना चाहिए। विषय पर कुछ नया चिन्तन प्रस्तुत करना चाहिए। समसामयिकता की अपेक्षा के अनुसार नवीन भाव-विचार के संकेत से पल्लवन में मौलिकता आती है।

5. कल्पनात्मकता–सृजनशील और मौलिक रचना होने के नाते पल्लवन में कल्पनाशीलता का स्थान अक्षुण्य है। उपर्युक्त दोनों विशेषताओं की आधार-भूमि भी यही है। कल्पनाशीलता के द्वारा नीरस विषय और नीरस अवसर को भी सरस और व्यंजनापूर्ण बनाया जा सकता है। लेखक की प्रतिभा, अभ्यास, अध्ययन, विचार और अनुभूति पर आधारित कल्पनात्मक क्षमता किसी विषय को सुन्दर और अर्थपूर्ण बनाती है। पल्लवन करते समय बीज रूप में प्राप्त विचार-बिन्दु का सिंचन कल्पना-रूपी खाद और पानी से किया जाता है तभी उसमें सरसता और प्रभविष्णुता अंकुरित होती है। यहाँ ध्यातव्य है कि कल्पना की उड़ान निरंकुश नहीं होनी चाहिए। जिस विषय पर पल्लवन करना है, उसके तथ्यात्मक स्वरूप को कल्पनात्मक रंग चढ़ा कर सुन्दर तो बनाया जाता है किन्तु विषयवस्तु प्रतिपाद्य और प्रस्तुतिकरण-शैली एकदम वायवीय नहीं बननी चाहिए। उनमें यथार्थता और स्वाभाविकता का गुण विद्यमान रहना चाहिए। जहाँ हम अति कल्पना का आश्रय लेने लगते हैं वहाँ कृति कृत्रिम, अविश्वसनीय और अयथार्थवादी होने लगती है। अतः पल्लवन में विषय का प्रतिपादन स्वाभाविकता की सीमा में रहकर ही किया जाना चाहिए। यह निबन्ध नहीं है, अतः कल्पना से अपेक्षा भी सीमित हो जाती है।

6. उन्मुक्तता–उन्मुक्तता सृजनशीलता की अन्य महत्त्वपूर्ण कसौटी है। उन्मुक्तता का अर्थ है–बन्धन मुक्त। सहज होकर लिखना। पल्लवन के विषय का प्रतिपादन किसी शास्त्रीय, परम्परित और रूढ़ि से मुक्त होना चाहिए। लेखक को चाहिए कि विषय के घेरे में आने वाले विभिन्न-पक्षों में से एक-दो पक्ष को उन्मुक्त रूप से चुने। उन पर सुचिन्तित विचार व्यक्त किए जाएँ। यदि किसी आग्रह-पूर्वाग्रह से ग्रस्त होकर विषय का विस्तार होगा तो वह सर्वजनसुलभ आनन्द

नहीं दे पाएगा। यदि किसी विचार का सूत्रपात करेगा भी, तो वह किसी वर्ग विशेष को तुष्ट करेगा। अपेक्षा यह है कि विषय का चुनाव और प्रतिपादन, सूत्र-गठन और उद्देश्य सब कुछ लेखक के व्यक्तित्व के स्वतन्त्र चिन्तन का प्रतिफलन होना चाहिए। पाठक अथवा जन-साधारण के लिए उससे कुछ ग्रहण करने की क्षमता होनी चाहिए।

7. प्रवाहमयता–पल्लवन एक सुगठित, समेकित इकाई है। इसमें जिन भाव-अनुभूतियों को प्रस्तुत किया जाता है, उनमें निरन्तर गति रहनी चाहिए। जब हमारे भाव और विचार विशृंखलित होकर व्यक्त होते हैं, उनमें पूर्वापर क्रम नहीं रहता, अथवा हम अपने चिन्तन और तर्कों में संगति नहीं बैठा पाते तब किसी कृति का निर्माण नहीं होता। मात्र कुछ वाक्यों का समूह हमारे सम्मुख रहता है अथवा किन्हीं कतरनों की पोटली से जूझने की कोशिश होती है। पल्लवन में क्योंकि सीमा एक-डेढ़ पृष्ठ तक निर्धारित रहती है, अतः हमें चुने हुए विषय से सम्बद्ध भाव-लहरियों, वैचारिक सूत्रों को उनके अनुरूप भाषा शैली में क्रमशः संयोजित कर लेना चाहिए। वास्तव में विषयवस्तु के बिन्दुओं और तर्कों का संयोजन प्रवाहमयता को प्रभावित करता है, जिस अनुच्छेद में पल्लवन किया जा रहा है। उसमें अनुच्छेद का गुण मिलना चाहिए। अनुच्छेद मात्र कुछ वाक्यों का समूह नहीं होता अपितु अपेक्षित भाव-विचारों की संयोजित क्रमशः विकसित भाषात्मक अभिव्यक्ति होती है। अतः प्रवाह को बनाए रखने के लिए भावों-विचारों को सुसंगठित कर लेना चाहिए। तत्पश्चात् प्रत्येक को एक-दूसरे के पूर्वापर सम्बन्ध के अनुसार क्रमशः विकसित करना चाहिए। अनुच्छेद के प्रत्येक वाक्य में ऐसी क्षमता होनी चाहिए कि वे विषयवस्तु के प्रत्येक अंग को एक-दूसरे से जोड़ते हुए शृंखला का आभास प्रदान करे।

8. सहजता–यह ऐसी विशेषता है जिसकी आवश्यकता वस्तु और शिल्प दोनों के लिए अनिवार्य है। जहाँ यह आवश्यक है कि विषय का चुनाव सहज हो वहाँ यह भी जरूरी है कि विषय का प्रतिपादन सहज हो। साहित्य की किसी भी विधा के लिए सहजता उपयोगी चीज है। पल्लवन करते समय कल्पना और मौलिकता की रक्षा सहज रह कर ही की जा सकती है। अभ्यास और प्रतिभा के बल पर गम्भीर और गुरुतर विषयों को भी सरलता से प्रतिपादित किया जा सकता है। यहाँ सरलता प्रतिपादन की है, व्यक्ति के व्यक्तित्व की है। लीक पीटने से गुरु-गम्भीर किन्तु आवश्यक विषय और अवसर नीरस हो जाया करते हैं। आज के युग में जबकि प्रत्येक क्षण किसी न किसी तनाव के साथ व्यतीत होता

है तब तो सहजता-सरलता अनिवार्य वस्तु है। इससे प्रवाहमयता बनी रहती है। पाठक की रुचि का परिष्कार भी हो सकता है। उसमें चीजों को समझने की रुचि भी तो उत्पन्न हो सकती है। अतः बात संक्षेप में ही क्यों न कही जाए सर्वजन सुलभ और सरल होनी चाहिए।

9. उक्तिवैचित्र्य–इसका अभिप्राय है–उक्ति-कौशल। किसी बात को कहने के अनेक प्रकार हो सकते हैं। इस प्रकार की अनेकता में से एक का चुनाव विषय और रूप की अपेक्षानुसार छाँटना चाहिए। पल्लवन के लिए यद्यपि विषय पुराने या जाने-पहचाने भी हो सकते हैं अथवा नवीन भी, किन्तु उसका प्रस्तुतिकरण कुछ इस प्रकार होना चाहिए जिससे नयापन झलके। पढ़ते ही लेखक की प्रतिपादन शैली से प्रभावित हुआ जा सके। हमारा अभिप्राय आलंकारिता या दुरूहता से कदापि नहीं है। साज-सज्जा का पल्लवन में अभाव रहता है किन्तु विचार सूत्रों और कथन-भंगिमा में कुछ ऐसा तालमेल और नयापन होना चाहिए जिससे विषय की महत्ता स्थापित हो सके। बेकार और उबाऊ लगने वाले विषयों में भी रुचि पैदा हो सके। बात सीधे-सपाट रूप में कही जाए तो कुछ और रंग देती है। कलात्मक तथा वक्रतापूर्ण कही जाए तो कुछ और रंग देती है। पल्लवन करते समय विषयों को व्यंजनात्मक बनाना भी बहुत जरूरी होता है। समय के बदलने के साथ शब्दों के अर्थ और विचार-हिन्दुओं के अभिप्राय बदलने लगते हैं। उन सभी छवियों की व्यंजनात्मकता को पकड़ कर अपनी बात समय, स्थान, विषय और व्यक्ति के अनुसार हाजिर-जवाब रूप में उपस्थित करना उक्ति वैचित्र्य की प्रधान आवश्यकता है। पारम्परिक एकरसता को उक्ति-कौशल भली-भाँति तोड़ सकता है।

10. शब्द-चयन–पल्लवन एक उन्मुक्त और मौलिक रचना है इसलिए इसमें जिस भाषा का प्रयोग किया जाता है और जिन शब्दों का चयन किया जाता है वे परम्परागत या पुस्तकीय ज्ञान से भिन्न होने चाहिए। शुद्ध-परिशुद्धता के स्थान पर सहजता शब्द-चयन प्रक्रिया का अंग होनी चाहिए। हम ऐसे शब्दों का उपयोग करें जिन्हें सब समझ सकें। ऐसे मुहावरे लाएँ जो सबको एकदम अर्थ की तह तक ले जा सकें। भाव हमारे अपने हैं, उनका संगठन हमारा अपना है तो हमें शब्दों के चुनाव में कोई कठिनाई नहीं होगी। उदाहरणों का चुनाव भी जाना-पहचाना और सहज होना चाहिए। यद्यपि कोई भी कृति सभी को समान सन्तुष्टि नहीं दे सकती तथापि पल्लवन करते समय हमें जनसाधारण के सामर्थ्य का अनुमान होना चाहिए।

11. भाषा-लालित्य–हमारे भाव और विचारों को अभिव्यक्त करने का माध्यम भाषा है। पल्लवन के द्वारा किसी विषय से सम्बद्ध विचार-बिन्दुओं को इस प्रकार व्यक्त किया जाता है कि सब लोग उसका आशय भली-भाँति सहज रूप में समझ सकें। इसके लिए आवश्यक है–ललित और सरल भाषा का प्रयोग। शब्द-चयन और उक्ति-वैचित्र्य-भाषा के औजार हैं। बिम्बात्मकता भाषा का अन्य महत्त्वपूर्ण गुण है। गद्य की भाषा ऐसी होनी चाहिए जिनसे शब्दों के अर्थ के साथ शब्दचित्र भी आँखों के समक्ष बनते चलें। तभी तो विषय की गम्भीरता भी सरलता और सहजता में बदलने लगती है। यह सब अभ्यास से आता है। प्रत्येक व्यक्ति की प्रतिभा, अध्ययन और अभ्यास जब विषय के विवेच्य सूत्रों को संजोकर प्रस्तुत करना चाहता है तो भाषागत उपकरण की सहजता उनके प्रभाव को द्विगुणित कर देती है। लाक्षणिकता और ध्वनिवादी शब्द-विधान यद्यपि अनावश्यक है तथापि मुहावरे और लोकोक्तियों का प्रयोग अनिवार्य है। यह भाषा में समास गुण प्रदान करता है। बिम्ब, उपमानों और प्रतीकों का चयन हमें अपने आस-पास के दैनिक जीवन से करना चाहिए। पल्लवन में कलेवर की दृष्टि से सीमा निर्धारित रहती है। इसलिए भाषा का सौन्दर्य उसकी थोड़े में अधिक कहने की क्षमता में निहित है। व्यंग्यात्मकता कथन को सारगर्भित बनाती है, इसका प्रयोग यहाँ अपेक्षित है। अन्त में कहा जा सकता है विषय की अपेक्षा के अनुरूप सहज सरल शब्द-चयन नवीन प्रतीक बिम्ब योजना और उपयुक्त उक्तिकौशल भाषा-गत सौन्दर्य के उपादेय अंग हैं। पल्लवन करते समय इन अंगों का पर्याप्त ध्यान रखना चाहिए।

पल्लवन की प्रविधि

पल्लवन की विशेषताओं का विवेचन करने के पश्चात् इसके रचना-प्रक्रिया और प्रविधि को समझना सरल हो जाता है। अब तक स्पष्ट हो चुका है कि 'पल्लवन' एक स्वतःपूर्ण और मौलिक रचना है। अतः इसकी रचना-प्रक्रिया और भाषिक-संरचना तद्नुरूप होगी। इस सन्दर्भ में हम कतिपय महत्त्वपूर्ण तथ्यों का विवेचन करेंगे।

1. विषय-चयन–पल्लवन करते समय विषय का चुनाव सर्वप्रथम और सर्वप्रमुख अंग है। एकाधिक विषयों में से अपनी रुचि और भावप्रवणता के अनुकूल विषय चुनना चाहिए। इसका कारण यह है कि यदि विषय, रुचि के अनुकूल होगा तो उस पर चिन्तन, कल्पना-शीलता और प्रतिभा का रंग चढ़ सकता है। यहाँ यह भी समझ लेना चाहिए कि इस सन्दर्भ में 'रुचि' का क्या अभिप्राय है? व्यक्ति जब किसी विषय पर विचार व्यक्त करने बैठता है तो उस विषय के अनुसार

उसके व्यक्तिगत अनुभव, सुनी-सुनाई बातें संयोजित होने लगती हैं। उसकी प्रतिभा तद्नुकूल कल्पना का आश्रय लेकर पक्ष-विपक्ष, सद्-असद् का तर्क-वितर्क करती है। इसलिए विषय के चुनाव में यह ध्यान रहना चाहिए कि किस विषय पर हम सर्वाधिक विचार कर सकते हैं। यदि विषय हमारे ज्ञान, प्रतिभा और कल्पना के परे की वस्तु होगा तो उसका पल्लवन क्या कर पाएँगे? इसलिए पल्लवन के समय यदि विषय के चुनाव का अवसर मिले तो अपनी सामर्थ्य के अनुकूल विषय का चुनाव सबसे पहली सीढ़ी है। यह 'विषय' ही वास्तव में 'बीज' कहा जाता है। यदि विषय समसामयिक परिवेश से होता तो उसे विभिन्न आयामों से समझाया जा सकता है।

2. चिन्तन-मनन–विषय के चुनाव के पश्चात् 'बीजारोपण' की आवश्यकता पड़ती है ताकि उसमें अंकुर फूट सकें। इसके लिए चिन्तन-मनन जरूरी है। विषय के आधार पर हमारे हृदय में विभिन्न भाव-विचार उत्पन्न होने लगेंगे। हमारी कल्पना उस विषय में अनुकूल सामग्री जुटाना आरम्भ कर देगी। हमारा अभ्यास, अध्ययन ज्ञान, प्रतिभा आदि निर्दिष्ट विषय के सन्दर्भ में तर्क-वितर्क करने लगेगी। उदाहरण-दृष्टान्त प्रस्तुत करने लगेगी। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि चिन्तन-मनन के द्वारा तद्नुकूल सामग्री का संकलन किया जाता है। इसी को साहित्यिक भाषा में अंकुरण-प्रक्रिया कह सकते हैं। इस प्रक्रिया में हमें अपने मन-मस्तिष्क को उन्मुक्त करके प्रत्येक कोण से उस पर सोचना चाहिए। अधिक-से-अधिक सामग्री से कतिपय संचित कोष तैयार करने में सुविधा हो सकती है। इन सब बिन्दुओं को कागज पर संकेत रूप में लिखते जाना चाहिए।

3. सामग्री-चयन–संकलित सामग्री को त्याग-ग्रहण के माध्यम से चुनाव करना पड़ता है। कौन-कौन-सी चीजें हम अमुक विषय में दे सकते हैं, कौन-सी नहीं। क्या प्रासंगिक है क्या अप्रासंगिक। क्या विषय के अनुकूल रहेगा, किसमें दूरान्वय दोष है। पाठक या श्रोता की रुचि और सामर्थ्य को भी यहाँ ध्यान में रखना चाहिए। पल्लवन के उद्देश्य को भी इस समय अपने मस्तिष्क में रखना चाहिए। वास्तव में चिन्तन-मनन की प्रक्रिया में हमारे विभिन्न अनुभव संचित होने लगते हैं। अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार पर्याप्त सामग्री संचित हो सकती है। इसलिए उसमें औचित्य का विचार करना पड़ता है।

4. सुसंगठन–इसके अन्तर्गत उपलब्ध सामग्री को संयोजया जाता है। विषय का अर्थ, स्वरूप, व्याख्या, उदाहरण, दृष्टान्त, लाभ-हानि, पक्ष-विषय, उपादेयता-सार्थकता, सन्देश आदि सीढ़ियों द्वारा उसके प्रतिपादन का क्रम तैयार

किया जाता है। यह अवस्था ऐसी होती है जिसमें अंकुल में पल्लव का प्रस्फुटन होता है। जब हम पल्लवन में अपरिचित को परिचित बनाते हैं, अप्रस्तुत को प्रस्तुत करते हैं तो उसमें उत्तरोत्तर विकास अपेक्षित रहता है। विभिन्न दृष्टिकोणों और तर्कों का अपना क्रम होता है। कल्पना और सर्जन-शक्ति का उपयोग यद्यपि खाद और पानी के रूप में किया जाता है तथापि अंकुरित वस्तु को स्वस्थ और सुगढ़, सुन्दर बनाने के लिए अनपेक्षित काट-छाँट की जानी आवश्यक है। प्रत्येक महान लेखक अपने अपेक्षित विषयों को तराश-तराशकर प्रस्तुत करता है। हाँ यदि हमारा अभ्यास और हमारी प्रतिभा बलवती है तो इसमें कोई कठिनाई होती। हम चिन्तन-मनन के क्रम में ही यह ग्रहण-त्याग सरलता से करते जाते हैं।

सामग्री-संयोजन के सन्दर्भ में पल्लवन के कलेवर पर भी ध्यान केन्द्रित रहना चाहिए। जिस प्रकार विषय से भटकाव पल्लवन को निरर्थक बना देता है उसी प्रकार निश्चित आकार से अधिक लिखना पल्लवन नहीं कहलाता। प्रायः 15-20 पंक्तियों का एक अनुच्छेद पल्लवन के लिए पर्याप्त है। अतः समग्र-संचित और कल्पित सामग्री को तद्नुरूप संयोजित करना और अधिक जरूरी है। इस बिन्दु पर आकर हमारा दृष्टिकोण मूल्यांकनपरक होना चाहिए।

5. लेखन–किसी निर्दिष्ट विषय या सूत्र पर चिन्तन-मनन से लेकर सामग्री-संयोजन का कार्य उसे विधिवत् विस्तार देने के लिए किया गया है। यहाँ हमें संयोजित सामग्री को इस प्रकार लिखित रूप देना चाहिए कि उसमें सर्जनात्मकता आ जाए। इसे पढ़कर ऐसा न लगे कि यह कठोर परिश्रम का फल है। विषय का प्रवर्तन करते हुए, उसका अभिप्राय समझाकर किंचित व्याख्या कर देनी चाहिए। उस व्याख्या को कुछ उदाहरण-उद्धरण आदि से पुष्ट कर देना चाहिए। इसके पश्चात् उसके पक्ष-विपक्ष का यथार्थ रूप में प्रतिपादन कर देना चाहिए। लेखन-कार्य में संचित रूपरेखा का विस्तार ऐसा होना चाहिए कि वह एक स्वतःपूर्ण और स्वतन्त्र अनुच्छेद प्रतीत हो। सर्जनात्मक और मौलिक रचना के लिए निर्धारित सामग्री का प्रस्तुतिकरण स्वाभाविक गति से होना चाहिए।

किसी विषय पर लिखते समय भाषा-शैली हमारा एकमात्र माध्यम होती है। अतः हमें सहज और सरल भाषा का प्रयोग करना चाहिए। शास्त्रीयता और निपट शुद्धता के स्थान पर साहित्यिक और सामान्य जन मानस के अनुकूल शब्दों का चयन करना चाहिए। मुहावरे और लोकोक्तियों के प्रयोग से एक तो कम शब्दों में ज्यादा बात कही जा सकती है, दूसरे उक्तिवैचित्र्य उत्पन्न होता है। अतः विषय और अवसर के अनुकूल मुहावरे आदि का प्रयोग करना चाहिए।

विषय को व्यंग्यात्मक और तीखा बनाने के लिए लाक्षणिक शब्दावली का उपयोग किया जा सकता है। बिम्बप्रधान अथवा चित्रप्रधान शब्दावली का उपयोग अवश्य करना चाहिए। इसका पल्लवन पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। वाक्य छोटे-छोटे और सरल होने चाहिए। संयुक्त वाक्य बनाने से बिखराव आने का खतरा रहता है। वाक्य संरचना ऐसी होनी चाहिए जिसमें संयोजित सामग्री एक के बाद एक, क्रमशः विषय का उद्घाटन और विकास हो सके। प्रतीक शैली के द्वारा भी अभिव्यक्ति को प्रभविष्ण बनाया जाता है। अन्त में कहा जा सकता है कि पल्लवन में सृजनात्मक रचना का आभास दिलाने के लिए उसकी लेखन-प्रक्रिया विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। लिखित रूप ही हमारी सुचिन्तित मानसिकता का प्रतिरूप है।

6. पुनरावलोकन—इसका अर्थ है—एक बार पुनः देखना। पल्लवन करने के पश्चात् उसे एक बार फिर पढ़ लेना चाहिए। ऐसा करने से एक तो अनुच्छेद के प्रवाह और उन्मुक्त स्वरूप का ज्ञान हो जाएगा। दूसरे, उसमें कोई महत्त्वपूर्ण तथ्य अथवा बात छूट तो नहीं गई है, इसका पता लग जाएगा। तीसरे, हमारी भाषा-शैली पुस्तकीय बन पड़ी अथवा सहज, उन्मुक्त और आम बोलचाल की भाषा में हमने अपने विचार प्रस्तुत किए, यह पता लग जाएगा। चौथे, प्रस्तुत अनुच्छेद में वर्तनी, वाक्य-विन्यास, शब्द-विन्यास और विराम-चिह्नों का प्रयोग उचित है या नहीं। पाँचवें, प्रस्तुत निष्कर्ष अथवा उपसंहार निर्दिष्ट विषय के अनुरूप हैं अथवा नहीं। छठे, समस्त 'पल्लवन' एक स्वतन्त्र, सातवें, विषय का कहीं अनपेक्षित विस्तार तो नहीं हो गया, और वह पल्लवन के स्थान पर निबन्ध तो नहीं बन रहा आदि। यदि उपर्युक्त किसी प्रकार की कोई कमी रह गई हो तो उसे तुरन्त दूर तक संशोधित कर लेना चाहिए। यह सब कर लेने पर एक श्रेष्ठ 'पल्लवन' तैयार हो सकता है।

उपर्युक्त विवेचन के पश्चात् अन्त में कहा जा सकता है—एक निश्चित सीमा में बँधकर किसी विषय का 'पल्लवन' करने के लिए हमें निरन्तर अभ्यास करते रहना चाहिए। यह अभ्यास विषयों के सन्दर्भ में चिन्तन-मनन के रूप में भी हो और लिखित आलेख के रूप में भी। निरन्तर अध्ययन के द्वारा ज्ञान के विकास के रूप में भी हो और कल्पना की उड़ान के द्वारा उस ज्ञान के विस्तार के रूप में भी। यदि ऐसा होता है, तो हमारी सृजनशीलता परिपक्व होती है। हम किसी भी विषय पर अपेक्षाकृत सरलता से अपने विचार व्यक्त कर सकते हैं।

पल्लवन के उदाहरण और दिशा-संकेत अनुकरण

यह प्रसिद्ध प्राचीन कहावत है कि 'अनुकरण मानव की सहज प्रवृत्ति है।' दूसरों की नकल करना, अर्थात् देखा-देखी काम करना कहाँ तक उचित है? सभी तो यह कहते हैं कि 'आत्मनिर्भर बनो'। 'अपने विवेक से काम करो।' 'अपनी मौलिकता का परिचय दो' इत्यादि; तब अनुकरण को मनुष्य की सहजवृत्ति क्यों कहा जाता है? जो सहज प्रवृत्ति है—वह अनुचित क्यों मानी जाए? इस तरह के अनेक शब्द 'अनुकरण' शब्द पढ़ते या सुनते ही मन-मस्तिष्क में उमड़ने-घुमड़ने लगते हैं। नन्हे बच्चों को हम अनुकरण से भाषा का प्रयोग सिखाते हैं। वह अनुकरण से ही खेलना, लिखना, अभिनय करना—यहाँ तक कि परिवार के अन्य लोगों का अनुकरण करके लड़ना, व्यंग्य करना, बातें बनाना और बहन-भाई या माता-पिता को चिढ़ाना भी सीख जाता है। हमें विद्यालय-महाविद्यालय, सभा गोष्ठी, लेख-कविता आदि में सदा यही सिखाया जाता है कि पूर्वजों का अनुकरण करो, महापुरुषों का अनुकरण कारो, फूलों से यह सीखो, तितली से वह सीखो, नदी से और वृक्ष का अनुकरण करो आदि। अब हम क्या करें? मौलिक बनें या अनुकरण करें? आत्मनिर्भर बनें या दूसरों से कुछ सीखें? कैसी विचित्र समस्या है? पिताजी का अनुकरण करके व्यापार में दो के चार बनाएँ तो शाबास और गुरु जी की लिखी पुस्तक का अनुकरण करके परीक्षा में दो की बजाय चार अंक लेने की चेष्टा करो तो धिक्कार? यह बात निश्चित रूप से स्पष्ट हो जानी चाहिए कि 'अनुकरण' उचित है या अनुचित, जिससे हमारी दुविधा मिटे, जंजाल कटे! शायद आप यह कहेंगे 'अनुकरण' तो ठीक है, पर 'अन्धानुकरण' ठीक नहीं। यह तो वही बात हुई, 'मक्खियाँ तो मारिए, पर मक्खी पर मक्खी मत मारिए।' हमारा विचार तो यह है कि न मक्खियाँ मारना ठीक है और न मक्खी पर मक्खी मारना। ठीक यह है कि सुनो सबकी, करो मन की। देखो, सोचो और फिर जो उचित लगे, वह करो!

अविस्मरणीय क्षण

जीवन का हर क्षण अनमोल है, हर क्षण का अपना विशेष महत्त्व है। परन्तु समय के तीव्र प्रवाह में सभी क्षण धूल-कण से घुलकर बह जाते हैं। उन्हें कैसे संभाला-संजोया जाए! कैसे यादों की पिटारी में सुरक्षित रखा जाए! यादें भी रेत-सी फिसल-फिसल हाथ से निकल जाती हैं। और फिर इतनी स्मरण शक्ति लाएँ कहाँ से जो किसी एक क्षण को कभी विस्मृत ही न होने दे! यहाँ तो साल-भर, दिन-रात,

बार-बार जो रट-रट कर याद करते हैं वह परीक्षा-भवन में प्रवेश करते ही, एक क्षण में हवा हो जाता है। सैकड़ों-हजारों घंटों की मेहनत पल-भर में शून्य होकर रह जाती है! और आप चाहते हैं कि फिर भी हम किसी अविस्मरणीय क्षण को यहाँ शब्दों की रंग-रेखाओं में पुनर्जीवित कर दें! क्या यही क्षण अविस्मरणीय नहीं है कि हम मस्तक पर हाथ मल कर सोच रहे हैं, मन की अँधेरी गुफाओं में यादों की टॉर्च घुमा-घुमाकर टटोल रहे हैं कि कोई ऐसा राज याद आ जाए जिसे हम भुला न पाए हों! पर आश्चर्य! जीवन के लाखों-करोड़ों क्षणों में से एक भी तो किसी भी सरकारी या गैर सरकारी बचत योजना के अन्तर्गत सुरक्षित नहीं रह पाया। काश, यदि हम जानते कि अविस्मरणीय क्षण भी परीक्षा में अंक दिला सकेंगे तो हम पुस्तकें रटने की वजाए क्षणों को ही संभालकर मस्तिष्क की तिजोरी में बन्द कर देते और आज लेखनी की नोक से उस तिजोरी का ताला खोलकर अंकों से अपनी झोली भर लेते! लो, तिजोरी और ताली से याद आ गया—एक बार पिताजी जल्दी में आयकर कार्यालय में जाते समय मुझसे कह गए—तिजोरी अच्छी तरह बन्द करके ताली सँभाल कर रख देना। रात को लौटकर उन्होंने ताली माँगी। मैंने बहुत खोजा, अपना बस्ता, पुस्तकें, अलमारी, बिस्तर, तकिया—सब कुछ छान मारा, पर ताली कहीं न मिली। पिताजी बहुत बिगड़े। माताजी को भी जितनी जली-कटी याद थीं, उन्होंने खूब सुनाईं। मेरी सारी पढ़ाई और योग्यता को कोसा! मैं सिवाय सिर झुका कर जमीन पर दृष्टि गढ़ाने के और क्या करता। रात-भर भी कोई सो न सका। अगले दिन पिताजी उदास मन से दुकान पर गए और मुझे कहा कि जाकर तालियाँ बजाने वाले को बुला लाओ! मैं जब ताली वाले को लेकर काँपते-काँपते दूकान पर पहुँचा तो पिताजी बाहर ही भौंहें ताने हुए मिले। बोले—नालायक, कहीं के। ताली तिजोरी में ही लगी भूल गए और हमें रात-भर परेशान किया! अब मैं क्या जवाब देता? मेरी भूल का वह क्षण सदा के लिए अविस्मरणीय बन गया!

आत्म-प्रदर्शन

प्रदर्शन तो बहुत से लोग करते रहते हैं, परन्तु आत्मप्रदर्शन में कोई-कोई विलक्षण व्यक्ति ही निपुण होता है। कोई मंच पर अपने अभिनय का प्रदर्शन करता है, कोई कागज या फलक पर अपनी चित्र-कला का। कोई अपनी बनाई हुई वस्तुओं का प्रदर्शन करता है और कोई-कोई अपनी बुद्धिमत्ता या मूर्खता का ही प्रदर्शन करता है। परन्तु अपना—स्वयं का प्रदर्शन सबके वश की बात नहीं। इसके लिए

चाहिए अदम्य साहस, असीम उत्साह और साथ ही थोड़ी-सी निर्लज्जता और धृष्टता भी! साहस या उत्साह तो प्रशंसनीय गुण है, पर निर्लज्जता या धृष्टता को भी यदि कोई 'गुण' मान ले तो क्या कहा जाए! आत्मप्रदर्शन की प्रवृत्ति का मूल आधार है—मनुष्य का अहम् भाव। 'मैं' ऐसा कर सकता हूँ, वैसा कर सकता हूँ—यह मैं और मेरा-पन मनुष्य की संकीर्णता और स्वार्थ-भावना का परिचय देता है। इसीलिए सभी सन्त-महात्माओं ने अपने अन्दर की 'मैं' को समाप्त करने की प्रेरणा दी है। कबीर का प्रसिद्ध दोहा है—'तूँ तूँ करता तूँ भया मुझ में रही न हूँ।' गुरुनानक ने भी इस 'हउमै' को आत्मा और परमात्मा में ही नहीं, मनुष्य और मनुष्य के बीच की दूरी का सबसे बड़ा कारण बताया है। भारतीय नीतिशास्त्र में बताए गए मनुष्य के पाँच शत्रुओं अर्थात् विकारों या दुर्गुणों में अहंकार अर्थात् आत्मप्रदर्शन की गणना भी की गई है—काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार। जगत् में 'मैं' ही नहीं—और मुझ जैसे या मुझसे अच्छे हो सकते हैं, तब मेरा आत्मप्रदर्शन थोथा ही तो है। थोथा चना बाजे घना, जो गरजते हैं वे बरसते नहीं। अधजल गगरी छलकत जाए और अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना ये सब कहावतें भी आत्मप्रदर्शन पर व्यंग्य करती हैं। हम जो भी हैं, जैसे हैं—यह हमारे कर्म और आचरण बताएँगे, उसकी घोषणा या प्रदर्शनी की क्या आवश्यकता है। प्रकृति कभी अपना बखान नहीं करती, सहज भाव से नियम-निर्वाह में प्रवृत्त रहती है—तभी वह हमसे श्रेष्ठ है, महान् है। फूल की गंध, जल की तरलता, चाँदनी की शीतलता, सूर्य की ऊर्जा और हिमालय की गरिमा स्वतःसिद्ध है। हमारा अस्तित्व और स्वरूप भी स्वयं हमारा व्यवहार स्पष्ट कर देगा। आत्मप्रदर्शन व्यर्थ है!

एक सपना (क)

सपने कौन नहीं देखता! सभी जानते हैं कि सपने कभी सच्चे नहीं होते। इसीलिए ज्ञानी जन कहा करते हैं कि सपनों की दुनिया से बाहर आओ। सपनों में मत खोये रहो! फिर भी हम हैं कि सपने देखना नहीं छोड़ते! हम ही क्यों—बड़े-बड़े नेता और महापुरुष सपना देखते हैं। हम बचपन से गांधी और नेहरू के सपनों के भारत की चर्चा सुनते आ रहे हैं। यह भी सुना है कि विवेकानन्द और तिलक, चन्द्रशेखर आजाद और भगत सिंह, सुभाषचन्द्र बोस और सरदार पटेल ने जो सपना देखा था, वह पूरा किया। इतना ही नहीं—हमें भी कहा जाता है कि माँ-बाप के सपनों को सच कर दिखाना हमारा कर्त्तव्य है! तब यदि हम भी सपना देखते हैं तो उसमें आश्चर्य की क्या बात है? सो, सपने तो हमें देखने ही चाहिए। पर

हाँ, उन सपनों को देखते-देखते यदि उन्हीं में खो जाएँगे तो वे सपने हमारे पैरों की बेड़ियाँ वन जाएँगे! हम प्रगति और विकास के पथ पर एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकेंगे। कवि हरिवंशराय बच्चन ने ठीक ही कहा है–

आँख में हो स्वर्ग लेकिन
पाँव पृथ्वी पर टिके हों!

सपने ही तो नया संकल्प जगाते हैं, हमें अपने कर्त्तव्य का बोध कराते हैं और हमारे हृदय में नवस्फूर्ति का संचार करते हैं। सपना सच न सही–सच की छाया ही सही, पर जैसे छाया से किसी व्यक्ति या वस्तु के आकार का अनुमान हो सकता है, उसी प्रकार सपनों से मानव-मन और जीवम की स्थिति का आभास सम्भव है।

एक सपना (ख)

वाह! परमात्मा ने कैसी कृपा की! बी.ए. में प्रथम श्रेणी ही नहीं आई, पूरे विश्वविद्यालय में दूसरा स्थान भी मिला! माता-पिता खुशी से फूले नहीं समा रहे। एक-एक को बुला-बुलाकर अपने लाड़ले के कमाल का किस्साा सुना रहे हैं। आस-पड़ोस वालों की बधाइयाँ और दिन-भर तरह-तरह की मिठाइयाँ! बड़े भाई साहब मेरा फोटो लेकर अखबार में छपाने जा रहे हैं। बहन अपनी सहेलियों को सुना-सुनाकर कह रही है–जिसे तुम निरा बुद्धू और गोबरगणेश बताया करती थीं उसने अपनी बुद्धि की धाक जमाकर गणेशजी का आशीर्वाद सच्चा कर दिखाया कि नहीं। मित्र बार-बार फोन करके होटल में पार्टी देने की रट लगाए हुए हैं। सचमुच, मैंने स्वयं इतने अधिक अंक प्राप्त करने की कल्पना भी नहीं की थी। मैं सोच नहीं पा रहा था कि किस-किसका धन्यवाद करूँ–ईश्वर का, गुरु-जनों का, दिन-रात सेवा करने वाली माताजी का या सरल प्रश्नपत्र बनाने और दिल खोलकर अंक देने वाले परीक्षकों का! आखिर माताजी ने कहा, पहले तो मन्दिर जाकर प्रभु का ही धन्यवाद करो! उठो! मेरे साथ चलो! मैं खुशी-खुशी उठा–और बस, उठ ही गया। मेरी आँख खुल गई। खुली पुस्तक–जिसे पढ़ते-पढ़ते मेरी आँख लग गयी थी–सामने मेज पर लुढ़क गई थी। घड़ी देखी, अरे! आठ बज गए! नौ बजे तो परीक्षा शुरू हो जाएगी! अंक तो जो मिलेंगे सो मिलेंगे, पहले परीक्षा तो दे आऊँ!

कम्प्यूटर

पुराणों में वर्णित गणेश जी आज कम्प्यूटर के रूप में साकार हो गए हैं। आपको बार-बार की गणना में कठिनाई होती है या किसी समस्या के विवरण को आप याद नहीं रख पाते, हर बात को लिखने और बोलने में आप असुविधा महसूस करते हैं, एक बार कोई बात आप बोल अथवा लिखकर भूल जाते हैं—तो भी चिन्ता मत कीजिए। आपकी सारी कठिनाइयाँ, तभी समस्याएँ और असुविधाएँ यह आधुनिक गणेश जी दूर कर देंगे। अब कोई आवश्यकता नहीं आपको अपनी स्मरण शक्ति बनाए रखने के लिए जड़ी-बूटियों या पेटेंट औषधियों के सेवन की। बस, आप एक बार पढ़ी या लिखी गई बात को अपनी कोमल-नाजुक उँगलियों से कम्प्यूटर में टंकित कर दीजिए और फिर तुरन्त भूल जाइए। यह जिम्मेदारी कम्प्यूटर की है कि वह आवश्यकता पड़ने पर आपको कोई भी पुरानी-से-पुरानी, छोटी-बड़ी हर बात, हर विवरण का, लम्बी-से-लम्बी गिनती, गणित, ज्योतिष, विज्ञान या भूगोल की किसी भी समस्या का समाधान तुरन्त उपलब्ध करा दे, बस केवल आपकी तर्जनी का एक इशारा चाहिए! अब भूल जाइए—पुरानी लोककथाओं और पौराणिक गाथाओं के सर्वशक्तिमान, जिन्नों या देवताओं को। पलक झपकते ही दृश्य को अदृश्य तथा अदृश्य को दृश्य में बदल देने वाला सबसे शक्तिशाली, बुद्धिमान, फुर्तीला और सबका हितकारी, विलक्षण जादूगर है—कम्प्यूटर! है न विज्ञान का कमाल! मनुष्य और प्रकृति की सारी क्षमता एक छोटे से डिब्बे में बन्द करके रख दी। जब चाहो, उसका उपयोग कर लो, न चाहो—आराम करो! लेकिन विज्ञान का यह चमत्कार साकार कैसे हुआ? यह अपने आप आकाश से नहीं उतरा, पाताल से नहीं निकला। इसे यह रूप प्रदान करने वाला भी है तो मनुष्य ही! मनुष्य ने ही अपनी प्रतिभा के पारस से; कुछ साधारण से पदार्थों को छूकर कम्प्यूटर के रूप में स्वर्ण का रूप दे दिया है। धन्य कम्प्यूटर नहीं, मनुष्य है जिसने कम्प्यूटर को बनाया और सारी मानवता की सेवा में लगाया।

जिसकी लाठी...

जी हाँ, जिसके पास यह है, उसी के पास सब-कुछ है। यह—अर्थात् लाठी सदा से लोक-जीवन में पूजी जाती रही है। मूर्तियों, देवी-देवताओं, महापुरुषों या

धर्म-ग्रन्थों की पूजा तो बताना या दिखावा भर है, वास्तविक पूजा तो होती है लाठी की! लाठी केवल बाँस की लम्बी-सी, पतली गोलाई वाली छड़ी-भर नहीं, यह ताकत और जादू की पिटारी है। मध्यकाल के लोक-गायक गिरधर कविराय ने यों ही नहीं कह दिया था–

लाठी में गुन बहुत हैं, सदा राखिये संग।

गिरधर कविराय ने इतना ही कहा कि आप बूढ़े हो गए हों, लाठी आपका सहारा बनेगी। थक जाएँ तो लाठी सहायता देगी। किसी जीव-जन्तु से भय हो, लाठी दूर कर देगी। नदी-नाला पार करना हो, लाठी से पानी की गहराई नापिए। पर शायद कविवर गिरधर के पास भैंस नहीं होगी या उन्होंने किसी की या किसी ने उनकी भैंस नहीं छीनी होगी, इसलिए उनका ध्यान इस कहावत पर न जा सका–'जिसकी लाठी उसकी भैंस।' और अब, न किसी को नदी-नाले पैदल पानी में से होकर पार करने पड़ते हैं, न ही मनुष्यों ने जीव-जन्तुओं को डराने लायक छोड़ा है। भैंसें तो कहीं-कहीं डेरी फार्मों के बाड़े में बँधी मिलती हैं। लेकिन लाठी की हस्ती और सत्ता की धाक आज भी है। राजतन्त्र हो या लोकतन्त्र, शिक्षा का क्षेत्र हो या वाणिज्य-व्यवसाय का, आप साहित्यकार हों या चाटुकार–लाठी है तो सफलता आपके चरण चूमेगी। लाठी नहीं तो आप घर के किसी कोने में दुबककर केवल जमाने के बदल जाने की दुहाई देते रहिए। या ऐसा कीजिए–आपके पास लाठी न भी हो तो भी नीचे लिखी पंक्तियों को ऊँचे स्वर से दोहराते रहिए, दुनिया आपकी वाह-वाह करेगी–

जिसकी लाठी उसके वोट।
जिसकी लाठी उसके नोट।
लाठी वालों की सरकार।
लाठी से करते सब प्यार।
लाठी से हो सर्वत्र प्रवेश।
लाठी-सेवक प्यारा देश।
लाठी सदा कराये पास।
लाठी सदा पुजावे आस!

नौका-विहार

कविवर सुमित्रानन्दन पन्त ने 'नौका-विहार' नामक कविता लिखकर स्वयं तो साहित्य-जगत् में नाम कमाया ही, वर्षों से नदी-किनारे पड़ी सड़ रही नौकाओं और भूखे मर रहे नाविकों के सोए भाग्य को भी जगा दिया। प्राचीन कविताओं में पढ़ा करते थे कि मनचले रईस मौज आने पर दरिया की मौजों पर किश्ती चलाते हुए मौज मनाते थे। फिर न रही रहीसी और न रहीं लहराती बल खाती नदियाँ। सैर-सपाटे, मौज-मेले के लिए होटल-क्लब, वीडियो-केन्द्र और बड़े-बड़े आधुनिक 'गार्डन' खुल गए। नदियाँ या तो सूख गईं या उनका सारा पानी लोगों ने अपने घरों या बिजली घरों में समेट लिया। बस, केवल काश्मीर में या फिर दक्षिण के कुछ क्षेत्रों में नौकाएँ रह गईं—वह भी विहार के लिए नहीं, व्यापार के लिए। परन्तु धन्य हैं कविवर पन्त, जिनका ध्यान नौका-विहार की ओर गया। मैंने यह कविता आठवीं में पढ़ी, दसवीं और बारहवीं में पढ़ी और अब बी.ए. के कोर्स में फिर पढ़ी। विद्यालय में मैं इसके शब्दों के अर्थ खोजने में ही उलझा रहा, पर महाविद्यालय में आकर जाना कि नौका-विहार भी कुछ है! यह केवल फिल्मी नायक-नायिकाओं का शगल नहीं, किसी भी सहृदय और भावुक मनुष्य का सुन्दरतम और प्रियतम मनोरंजन बन सकता है। कक्षा में शिक्षक महोदय ने इस कविता की ऐसी व्याख्या की कि हमें लगा, हम कक्षा में नहीं बैठे, सचमुच किसी नदी में नौका-विहार कर रहे हैं। कक्षा समाप्त होते ही पुकार उठी—चलो, नौका-विहार करें। साथियों की सूची बनी, चन्दा इकट्ठा किया गया, प्राचार्य से अनुमति ली गई, शिक्षक महोदय को भी साथ चलने को मना लिया। नदी बहुत दूर थी और नगर बस सेवा अपनी आदत से मजबूर थी। पहुँचते-पहुँचते साँझ ढल आई। नौका-विहार का सारा उत्साह हवा हो गया। पर शिक्षक तो सौन्दर्य-मर्मज्ञ थे। उन्होंने नौका-विहार के समय पहले तो जल में झलकते और लहरों पर लहराते सूर्यास्त के और फिर पूर्व से उगते पूनो के चाँद के प्रतिबिम्बों की ऐसी-ऐसी उपमाएँ बताईं कि हम आत्मविभोर हो गए। नदी की लहरों को उन्होंने सिन्दूर को परतों जैसा बताकर, नौका को झूमते शीशफूल कल्पित किया। फिर कहा—देखो, उधर से चाँद भी हम सबके साथ मिलकर नौका-विहार करने को ललक रहा है—चलो, उसे भी ले आएँ! सचमुच, हम सब कुछ भूलकर कमर कभी चाँद को और कभी चाँदनी को छूने में ही खो गए!

मन के हारे हार है...

मानव का मन उसके जीवन का सूत्रधार और संचालक है। मन चंगा तो कठौती में भी गंगा। मन चोर तो सारी जिन्दगी बोर। आपके पास कितना भी धन हो, परन्तु उसके उपयोग के लिए सही मन न हो तो सब व्यर्थ। लेकिन चाहे आप कितने भी असमर्थ हों, मन में उमंग और उत्साह है तो सारी असमर्थता सामर्थ्य में बदल जाएगी। बड़े-बड़े त्यागी-तपस्वी ऋषि-मुनियों ने घोर वनों और पर्वतों में पूरा जीवन विता दिया, फिर भी वे कभी चिन्तित नहीं हुए, भोजन-आवास या सुख-सुविधाओं के लिए व्यथित नहीं हुए, क्योंकि उनका मन उनके पास था, उनका मन उनके वश में था, उन्होंने मन को जीत लिया था। राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, शंकराचार्य, नानक, कबीर, तुलसी, अरविन्द और गांधी—सभी ने मन को जीता, जग को जीत लिया। ईसा और हजरत मुहम्मद ने मन को नहीं हारने दिया, इसलिए वे जीवन-भर अपने विरोधियों से पराजित नहीं हुए। दूसरी ओर जिनका मन हार जाता है, जिनके विचार दृढ़ नहीं होते, जो अपने संकल्प पर स्थिर नहीं रह पाते, जो टीन की चादर के समान तनिक से सुख की शीतलता से एकदम ठंडे और जरा-से दुःख की तपन से तप्त हो जाते हैं, वे संसार-सागर की लहरों में तिनके-से बहकर विलीन हो जाते हैं। हिमशिखरों पर चढ़कर अपनी बहादुरी का झंडा गाड़ने वालों के शरीर में न तो पंख लगे थे न किसी मशीन के पुर्जे। वे कदम-कदम बढ़ते रहे, चढ़ते रहे, उन्होंने मन को नहीं हारने दिया। उनकी जीत हुई। सागर की गहराई नापकर मोती निकाल लाने वाले भी ऐसे ही मन के धनी होते हैं। हमारे स्वाधीनता संग्राम में विदेशी शासकों ने क्या-क्या अत्याचार न किए। मुट्ठी पर हड्डियों से बने भारतीय देश-भक्तों को क्या-क्या कष्ट दिए गए, पर उनका मन विचलित न हुआ। जब-जब भी किसी का साहस टूट जाता है, धैर्य छूट जाता है, अर्थात् मन हार जात है, तव-सब उसे विफलता का मुँह देखना पड़ता है। परन्तु जहाँ चाह होती है वहाँ राह बन जाती है।

परिवर्तन ही जीवन है

परिवर्तन जीवन का अटल नियम है यह संसार परिवर्ततनशील है। प्रकृति परिवर्तनशील है हमारा जीवन इस संसार और प्रकृति का ही एक अंग है। वह सदा एक-सा कैसे रह सकता है। हम एक बीज धरती में डालते हैं, कुछ समय वाद वह वीज 'बीज' नहीं रहता, कोंपल बनकर फूट पड़ता है। कोंपल अंकुर में, अंकुर पत्तियों

में, पत्तियाँ फूलों में, फूल फलों में और फल पुनः बीजों में—परिवर्तन का यह सिलसिला सदा चलता रहता है। कभी आकाश में सूर्य की तप्त किरणें दमकती हैं और कभी चाँद की शीतल किरणें चमकती हैं। कभी घनघोर घन मंडराने लगते हैं, कभी सब-कुछ अदृश्य हो जाते हैं और पक्षी चहचहाने लगते हैं। सृष्टि की कोई भी वस्तु सदा एक-सी नहीं रहती। गर्मी-सर्दी, बरसात-पतझड़-वसन्त-ऋतुओं का यह आना-जाना परिर्वतन का ही ताना-बाना है। समय भी कब एक-सा रहा है। नदी के उद्दाम प्रवाह की तरह उसकी गति अविराम है एक क्षण आशा, दूसरे पल निराशा, अभी धन-दौलत के अम्बार और राग-रागिनियों की झंकार; अभी सब कुछ निस्सार, केवल हाहाकार! शैशव, बचपन, यौवन और बुढ़ापा ही परिर्वतन की सीढ़ियाँ नहीं। हर दिन, हर वर्ष, हर युग में बदलते विचार और दृष्टिकोण, रीतियाँ और नीतियाँ कायदे और कानून—सब कुछ बदलता रहता है। कल जो पाप समझा जाता था—आज जीवन का अभिन्न अंग है। आज जो शुभ समझा जा रहा है, कल उसी को अभिशाप माना जा सकता है। तब आखिर सत्य क्या है? जीवन क्या है? वह है बस—निरंतर परिवर्तन। परिवर्तन ही विकास का आधार है और प्रगति का सोपान है। परिवर्तन न हो तो जीवन का विकास रुक जाएगा। हम जड़-निष्प्राण होकर रह जाएँगे। नयी-नयी अनुभूतियों, उमंगों और तरंगों की हलचल के बिना गति अवरुद्ध हो जाती। यदि जीना है तो चलना है, बदलना है, या परिवर्तन ही जीवन है।

समय : अमूल्य धन

हमारे इस जीवन की छोटी-सी गागर में विधाता ने समय का अथाह सागर भर दिया है, पर हम उस सागर में डुबकी लगाकर सफलता के मोती खोजने की बजाय, उस जीवन-गागर को यों ही छलकाते हुए समय का अमृत ढुलकाते रहते हैं। कमान से छूटा हुआ तीर, तोप से निकला हुआ गोला और जीवन की पिटारी से निकला हुआ समय कभी वापस नहीं आता। तीर वह जो निशाने पर लगे, गोला वह जिसके छूटते ही शत्रु दुम दबाकर भगे और समय वह जिसका एक-एक क्षण सदुपयोग में लगे। खेती सुख गई तो वर्षा होने पर फिर हरी हो जाएगी, बीमारी ने घेर लिया है तो अच्छा इलाज होने पर वह दूर चली जाएगी, तिजोरी खाली हो गई है तो उद्यम तथा विवेक से पुनः भर जाएगी, लेकिन जीवन की गागर से टपकने वाला समय के हर क्षण का एक-एक कण अन्त में जब आयु के रेगिस्तान

में विलीन हो जाएगा तो फिर लाख सिर पटकने पर भी वापस नहीं आएगा। इसीलिए हमारे प्राचीन ऋषि महात्मा विधाता से और कुछ नहीं माँगते थे, केवल यही याचना करते थे—हम सौ वर्ष तक जिएँ! (जीवेन शरदः शतम्।) जान है तो जहान है और यदि समय का एक-एक पल विधाता का वरदान है। इसे यों ही व्यर्थ की बातों में, मेल-मुलाकातों में या सैर-सपाटों में गँवा देना विधाता के वरादन का ही अपमान नहीं, अपने अज्ञान और अविवेक की ही पहचान है। कबीर जैसे फक्कड़ और घुमक्कड़ महात्मा ने भी मनुष्य को यही उपेदश दिया—

काल करै सो आज कर, आज करै सो अब।
पल में परलै होयगी, बहुरि करैगौ कब।

जब एक पल का भरोसा नहीं, तो जो भी पल इस समय हमारा है, वही हमारे जीवन का सर्वोत्तम सहारा है। धन का कंजूस निंदनीय होता है किन्तु समय का कंजूस प्रशंनीय। धन दोनों हाथों से परोपकार में लुटाइये, लेकिन समय को दोनों हाथों से थामकर जीवन के उपयोग में लगाइये। रुपया-पैसा, सोना-चाँदी ही धन नहीं, समय की पाबन्दी सबसे सच्चा और अमूल्य धन है।

'पल्लवन' के लिए कुछ रूपरेखाएँ

'पल्लवन' एक कला है। जिस प्रकार नृत्य-संगीत, गायन-वादन, चित्र-मूर्ति और वास्तु-स्थापत्य कला के लिए एक कोमल भावुक हृदय के साथ, साधना-युक्त परिश्रम और अभ्यास चाहिए, उसी प्रकार 'पल्लवन' की कला में कौशल प्राप्त करने के लिए भी कल्पनाशीलता और भावुकता के साथ-साथ अर्थप्रवण भाषा और चुम्बकीय सुई के समान मन को खींच लेने वाली प्रभावी शैली की आवश्यकता है। एक ही प्रकार की सामग्री से जैसे अलग-अलग शिल्पी अलग-अलग कला-कृतियाँ तैयार करते हैं और हर एक का अपना अलग-अलग सौन्दर्य तथा आकर्षण होता है; उसी प्रकार एक ही विषय, विचार-विन्दु या वस्तुस्थिति का पल्लवन अलग-अलग व्यक्ति, अलग-अलग ढंग से—अलग प्रकार की भाषा-शैली में करेंगे। अतः 'पल्लवन' के अनेक रूप और आयाम, स्वरूप और प्रतिमान, आकर्षण और प्रभाव सम्भव है। उदाहरणार्थ, यहाँ कुछ विषयों के 'पल्लवन' की एक ही अधिक रूपरेखाएँ इस प्रयोजन से प्रस्तुत की जा रही हैं जिससे पल्लवन के सौन्दर्य-वैविध्य का आभास हो सके।

दूरदर्शन

1. मानव विज्ञान का ऋणी, उसके वरदानों से मानव-जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन के अनेक चमत्कारों में से 'दूरदर्शन' भी एक—'दूरदर्शन' ज्ञान-विज्ञान, मनोरंजन और शिक्षा, समाज और संस्कृति, व्यक्ति और समाज का अद्‌भुत संगम—वह बाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, निर्धन-धनवान, अशिक्षित-विद्वान, शहरी-ग्रामीण सभी का मित्र, पथप्रदर्शक और शुभचिन्तक, कल तक जो हजारों वर्ष पुरानी बातें केवल सुनी और पढ़ी जाती थीं, उनका आज दूरदर्शन ने प्रत्यक्ष साक्षात्कार करा दिया है—जो कुछ हम जीवन-भर संसार-भर की यात्रा करके नहीं देख, जान या सीख सकते, वह सब-कुछ दूरदर्शन ने घर बैठे कुछ ही समय में दिखा और सिखा दिया है।

2. दूरदर्शन आज हमारे जीवन के सबसे अधिक निकट—इसके द्वारा अब 'दूर के ढोल सुहावने' वाली कहावत एकदम गलत साबित—दूरदर्शन ने हजारों मील और हजारों वर्ष दूर की वस्तुओं तथा बातों को इतनी निकटता से दिखा और सुना दिया है कि इसका नाम बदलकर 'निकटदर्शन' कर देने को जी चाहता है—परन्तु सावधान! जैसे ही आप दूरदर्शन के निकट दर्शन करेंगे, आपका आनन्द धीरे-धीरे विषाद में दबल जाएगा, दूरदर्शन के आप जितना निकट होंगे, आपकी नेत्र ज्योति आपसे उठकर उतनी ही दूर होती चली जाएगी—दूरदर्शन से जितना दूर रहेंगे, उतना ही अच्छा!

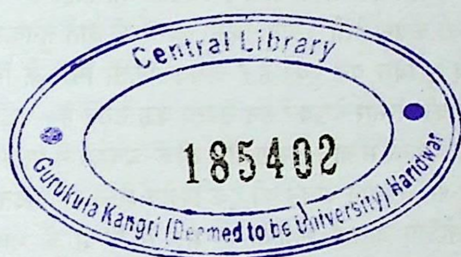
ऊपर दी गई दोनों रूपरेखाओं की अपनी-अपनी अलग विशेषताएँ हैं। इनके अतिरिक्त अन्य भी अनेक ऐसे पहलू अथवा आयाम हो सकते हैं जिन्हें उजागर करते हुए 'दूरदर्शन' विषय का पल्लवन बहुत रोचक और प्रभावी ढंग से किया जा सकता है।

इसी प्रकार, शैली-वैविध्य की दृष्टि से एक अन्य विषय के पल्लवन की रूपरेखाएँ आगे दी जा रही हैं।

बचपन

1. जीवन का स्वर्णकाल—खुशियों का खजाना—न आय की चिन्ता, न व्यय की, बस खाना-पीना और खेलना—माँ की प्यारी गोद—पिता का प्यार-दुलार—भाई-वहनों की छीना-झपटी—साथियों से बहस तकरार—मस्ती अपार—न कोई सोच न विचार—हँसी और ठहाकों की गुँजार—लेकिन हाय! जवानी की पुलिस ने आते ही सब कुछ बन्द कर दिया—माँ का दुलार छीनकर घर से बाहर भटकने की राह पर छोड़ दिया—काश! वह बचपन फिर लौट आए!

2. बचपन—जीवन-अट्टालिका की आधरशिला—विशाल वटवृक्ष का नन्हा अंकुर—जिन्दगी के सफर की पहली सीढ़ी—सुख-दुख के रसीले और खट्टे-मीठे फलों के बीच का अंकुर—जिसे चाहिए स्वच्छ वातावरण की हवा, निर्मल हृदय का जल—स्नेह सौहार्द्र की सौंधी मिट्टी की खाद—बचपनः एक उजला दर्पण—छल-कपट की मैल से सर्वथा अछूता—नैसर्गिक दीप्ति से विभूषित—यथार्थ और वास्तविकता का सच्चा प्रतिबिम्ब—इसे ईर्ष्या और स्वार्थ की कालिमा से कलुषित करना महान् अपराध—यह गीली मिट्टी—इससे सुन्दर और सौम्य मूर्तियाँ गढ़ने की आवश्यकता—बचपन की पौध को जैसा सींचा और पाला-पोसा जाएगा, राष्ट्र को वैसे ही फूल-फल प्राप्त होंगे।



मुहावरे और कहावतें

मुहावरा : स्वरूप एवं परिभाषा

'मुहावरा' मूलतः एक अरबी शब्द है जिसका अभिप्राय है—'निरन्तर अभ्यास द्वारा रूढ़ हो चुकी कथन-शैली'। प्रायः किसी वक्ता की बातें सुनकर हम कह देते हैं—'यह तो उसका मुहावरा बन चुका है।' अथवा किसी मित्र के हिन्दी-कथन में अंग्रेजी प्रयुक्तियों की भरमार देखकर हम सहसा कह उठते हैं—'भई विदेशी मुहावरा छोड़ हिन्दुस्तानी मुहावरे में बातें समझाओ।' लोक-व्यवहार में 'मुहावरा' का अर्थ है—'मुँह पर चढ़ा हुआ' (अर्थात् बोलने की एक विशेष शैली या आदत में ढला हुआ भाषिक प्रयोग) इसीलिए बीसवीं शताब्दी के शुरू में हिन्दी के भाषाशास्त्रियों ने अरबी शब्द 'मुहावरा' के लिए हिन्दी प्रयोग 'वाग्धारा' का प्रयोग किया। परन्तु सामान्य जन-वाणी में 'वाग्धारा' की अपेक्षा 'मुहावरा' शब्द अधिक प्रचलित होने के कारण, व्याकरण और साहित्य में भी इसी शब्द का प्रयोग मान्य है।

'मुहावरा' के स्वरूप को समझने के लिए यह जान लेना जरूरी है कि 'मुहावरा' एक विशेष प्रकार का ऐसा प्रयोग है जो सामान्य, मुख्य, प्रसिद्ध (वाच्य या अभिधेय) अर्थ से हट कर किसी अन्य विशेष अर्थ का बोध कराता है। **'कान काटना'** प्रयोग का सामान्य अर्थ होगा—शरीर की श्रवण-इन्द्रिय (कान) को किसी तेज धार वाली वस्तु से काट कर (शरीर से) अलग कर देना। यह सामान्य अर्थ तो नितान्त असंगत प्रतीत होता है। कोई भी सचमुच चाकू-ब्लेड-कैंची लेकर किसी के कान नहीं काटता। तब इसके उस 'विशेष' अर्थ की ओर ध्यान जाता है जिसके अनुसार 'कान काटना' का अभिप्राय है—'बहुत चालाक होना'। जैसे—**'यह छोटा-सा बालक तो बड़े-बड़ों के कान काटता है।'** इस प्रयोग से स्पष्ट है कि 'यह तो बहुत चालाक है।' कहने की अपेक्षा 'यह बड़े-बड़ों के कान काटता है।'—कहना

अधिक प्रभावशाली प्रतीत होता है। इसी प्रकार 'वे दोनों तो **घी-शक्कर हैं।'** अथवा 'उन दोनों में **36 का नाता** है।' कहने का सामान्य अर्थ वास्तविक मंतव्य का संप्रेषण नहीं कर पाता। 'घी-शक्कर' घुल-मिलकर ऐसे एकरस, एक स्वाद हो जाते हैं कि उन्हें अलग नहीं किया जा सकता। इसके आधार पर 'घी-शक्कर होना' का वास्तविक अभिप्राय है–'अभिन्न मित्र होना।' इसके विपरीत 36 के अंक में तीन (3) का रुख बाईं ओर रहता है तथा छः (6) का दाईं ओर–एक-दूसरे के एकदम उलट। सो, इस मुहावरे का संप्रेष्य अर्थ है–'एक-दूसरे के सर्वथा विपरीत (विरोधी) होना।'

'मुहावरा' का यह विशेष अर्थ प्रायः **'लक्षणा'** शब्द शक्ति पर आधारित होता है। 'लक्षणा' शब्द शक्ति में भी किसी शब्द का सामान्य कोशगत (मुख्य या वाच्य) अर्थ असंगत प्रतीत होता है। तव, प्रयुक्त शब्द के लक्ष्यार्थ द्वारा एक अन्य विशेष अर्थ का बोध होता है। 'पेट में चूहे दौड़ना' का अभिप्राय यह नहीं कि किसी के पेट में सचमुच कई चूहे कहीं से आकर घुस गए हैं और वहीं (पेट में) इधर-से-उधर दौड़ रहे हैं। वास्तविक अभिप्राय 'लक्ष्यार्थ' द्वारा ज्ञात होता है। जब कोई मकान कई दिन तक खाली रहता है तो उसमें चूहे दौड़ते फिरते हैं। हम समझ जाते हैं बड़ी हलचल है। चूहों को जो मिलता है–खा-कुतर लेते हैं। इससे एक बेचैनी का अनुभव होता है। इसी प्रकार 'पेट में कुछ (आहार) न होने से बेचैनी होना' पेट में चूहे दौड़ना' का लक्ष्यार्थ हुआ।

इस आधार पर 'मुहावरा' की निम्नलिखित परिभाषा की जा सकती है–

'जो वाक्यांश (शब्द-समूह) अपने सामान्य अर्थ की अपेक्षा किसी अन्य विशेष अर्थ-बोध के लिए रूढ़ हो जाता है, उसे मुहावरा कहते हैं।'

उपर्युक्त परिभाषा से 'मुहावरा के तीन आयाम माने जा सकते हैं– (1) सामान्य शब्दार्थ का त्याग, (2) किसी विशेष अर्थ का बोध, (3) उस विशेष अर्थ में रूढ़ अभ्यास में प्रचलित होना। एक उदाहरण द्वारा ये तीनों आयाम स्पष्ट किए जा सकते हैं–'ज़ब रामसिंह की बेईमानी पकड़ी गई तो वह **पानी-पानी हो गया।'** इस वाक्य का अर्थ यह नहीं कि रामसिंह का अस्तित्व जलमय हो गया है। इस सामान्य अर्थ को छोड़कर, अन्य विशेष अर्थ का बोध होगा कि **रामसिंह बहुत लज्जित हुआ।** इस अर्थ का बोध किसी तर्क, युक्ति या व्याकरणिक नियम के अनुसार नहीं हुआ, अपितु इसलिए हुआ है कि यह परम्परा में (निरन्तर प्रयोग में) रूढ़ (निश्चित) हो चुका है। 'लज्जित होने' का बोध कराने के लिए 'जल-जल होना', 'नीर-नीर होना' या 'सलिल-सलिल होना' का प्रयोग कोई नहीं करता और

न ही करना सार्थक होगा। ये तीनों प्रयोग रूढ़ (परम्परा में प्रचलित) नहीं हैं। 'रूढ़' 'प्रयोग' तो **पानी-पानी हो जाना ही है।**)

इस प्रकार 'परम्परा में रूढ़ होना' मुहावरा का प्रमुख आधार है। इसीलिए किसी एक भाषा का मुहावरा दूसरी भाषा में शब्द-प्रति-शब्द अनूदित नहीं किया जा सकता। 'He felt a shy' को मुहावरेदार अंग्रेजी में 'He became water-water' कहना कितना असंगत, अटपटा और हास्यास्पद प्रतीत होगा। कहेंगे—'He cut a sorry figure.'

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'मुहावरा' प्रयत्नपूर्वक नहीं गढ़ा जा सकता। यह लोक-अनुभव के आधार पर निरन्तर प्रयोग द्वारा स्वतः ही प्रचलित हो जाता है। एक बार 'रूढ़' (परम्परा में प्रचलित) हो जाने के बाद वह भाषा का एक स्वाभाविक अंग बन जाता है। व्याकरण और कोश में उसे निश्चित स्थान और स्थायी महत्त्व प्राप्त हो जाता है।

कहावत (लोकोक्ति) लक्षण एवं स्वरूप

'कहावत' (लोकोक्ति) एक ऐसा योग रूढ़ि शब्द है, जिसमें 'लोक' और 'उक्ति' (लोक अर्थात् जन-सामान्य में प्रचलित उक्ति अर्थात् बात) का संयोग है तथा जो कुछ विशेष प्रकार के उपदेशात्मक, नीतिपरक और अनुभव-सिद्ध कथनों के रूप में रूढ़ हो चुका है। इस दृष्टि से, कहावत (लोकोक्ति) का यह लक्षण किया जा सकता है—

'जो लोक-प्रचलित वाक्य किसी विशेष कथन का समर्थन करने के लिए अनुभव सिद्ध तथ्य अथवा दृष्टान्त के रूप में रूढ़ हो चुका हो, उसे कहावत (लोकोक्ति) कहते हैं।'

उपर्युक्त लक्षण के आधार पर कहावत के स्वरूप की चार आधारभूत बातें उभरकर सामने आती हैं—

(1) कहावत एक लोक-प्रचलित वाक्य है।

(2) वह किसी अन्य कथन के समर्थन (उसकी दृष्टि करने) के लिए प्रयुक्त होती है।

(3) वह किसी अनुभव-सिद्ध तथ्य या दृष्टान्त पर आधारित होती है।

(4) वह अपने विशेष अर्थ में रूढ़ हो चुकी होती है।

कहावत के उपर्युक्त लक्षणों को एक उदाहरण द्वारा भली भाँति स्पष्ट किया जा सकता है—'**तुमने तब तो किसी भी मित्र की बात न मानी। अब संकट सामने**

आ गया तो हाय-हाय कर रहे हो। अब पछताए होत क्या, जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत!'

कभी किसी किसान ने अपने खेत की सावधानी से रखवाली नहीं की होगी। बाद में पक्षियों द्वारा सारे दाने चुग लेने पर पछताना व्यर्थ था। इस घटनात्मक तथ्य में छिपे सन्देश को धीरे-धीरे जन-सामान्य के एक उपदेशात्मक सूक्ति का रूप दे दिया और प्रचलित हो गई। इस प्रकार, कहावत का प्रयोग जिस सन्दर्भ में किया जाता है, उसका भले ही उस (कहावत) से सीधा सम्बन्ध नहीं होता, किन्तु निष्कर्ष रूप में संप्रेषित विचार, नीति, सन्देश आदि के भाव से अवश्य सम्बन्ध होता है। किसी एक घटना या तथ्य से प्राप्त होने वाला अनुभव, उसी जैसी अन्य घटनाओं या तथ्यों पर भी समान रूप से लागू होता है।

'मुहावरा' और कहावत में अन्तर

1. मुहावरा दो-तीन शब्दों का ऐसा समूह होता है जिसे अपने आप में वाक्य नहीं कहा जा सकता, न ही उसे स्वतन्त्र वाक्य के रूप में प्रयोग में लाया जा सकता है। उसे हम एक 'शब्द-गुच्छ' या 'वाक्यांश' कह सकते हैं। इसके विपरीत 'कहावत' अपने आप में एक स्वतन्त्र वाक्य का रूप लिए रहती है। **मुहावरा**—'चिकना घड़ा होना' (ढीठ होना, जिस पर किसी के उपदेश का असर न हो) कहावत 'अधजल गगरी छलकत जाए'—आधी गागर अधिक छलकती है (अल्पज्ञानी व्यक्ति अधिक बोल कर आत्मप्रदर्शन करता है)!

2. उपर्युक्त अन्तर के आधार पर, 'मुहावरा' और 'कहावत' में एक अन्य भिन्नता स्वतः स्पष्ट हो जाती है। 'मुहावरा' किसी अनिश्चित कालवाची ऐसी क्रिया के रूप में होता है, जिसमें मूल धातु (हो, खोद, बैठ, पी, उछाल आदि) में 'ना' प्रत्यय से जुड़कर बनी होती है। जैसे पानी-पानी होना, घास खोदना, हाथ पर हाथ रखकर बैठना, खून का घूँट पीना, पगड़ी (टोपी) उछालना आदि। कहीं-कहीं इसका अपवाद भी मिलता है। जैसे—'काला अक्षर भैंस बराबर'। परन्तु इसमें भी 'होना' का भाव निहित तो है ही—'काला अक्षर भैंस बराबर होना' ही वास्तविक प्रयोग है। **जैसे—'उसे बार-बार यह पत्र क्यों दिखा रहे हो, उसके लिए तो 'काला अक्षर भैंस बराबर है।'**

'कहावत' प्रायः वाक्य का रूप होने के कारण पूर्ण क्रिया पर आधारित होती है। जैसे—'नौ सौ चूहे खा के बिल्ली हज को चली' अथवा **'अन्धी पीसे कुत्ता खाए'**। इसके भी अपवाद हैं। जैसे—'आम के आम, गुठलियों के दाम'।

इस कहावत में कोई क्रिया नहीं, फिर भी यह अपने-आप में पूर्ण वाक्य का अभिप्राय प्रदान करने में समर्थ है।)

3. 'मुहावरा' के सामान्य (मुख्य, वाच्य या अभिधेय) शाब्दिक अर्थ का, उसके प्रतीयमान (विशेष प्रतीति कराने वाले अन्य) अर्थ से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं होता। 'मक्खियाँ मारना' और 'बेरोजगार होना' में कोई सीधा अर्थगत सम्बन्ध नहीं है। इसके विपरीत 'कहावत' का मुख्य शाब्दिक अर्थ ही दृष्टान्त, प्रमाण या सन्देश के रूप में अभिप्रेत होता है। इसमें 'मुहावरा' के समान मुख्य अर्थ का त्याग नहीं होता, अपितु उस मुख्य अर्थ के निष्कर्ष के रूप में भाव ग्रहण किया जाता है। जैसे—'गंगा गए गंगादास, जमुना गए जमुनादास।' इस कहावत के मुख्य अर्थ (वह गंगा पर जाकर अपना नाम गंगादास रख लेता है और जमुना पर जाते ही नाम बदल कर जमुनादास कर लेता है) से ही 'अनिश्चयवादी' या 'अवसरवादी' होने का भाव-बोध होता है।

4. 'मुहावरा' और 'कहावत' के प्रयोग की विधि में भी मूलभूत अन्तर है। मुहावरा किसी वाक्य के बीच, उसी (वाक्य) के अंग के रूप में प्रयुक्त होता है। जैसे—'आँखें नीची होना—लज्जा का अनुभव होना, पुत्र की करतूत सुनकर पिता की **आँखें नीची हो गईं।**' इसके विपरीत 'कहावत' किसी वाक्य को पूरा हो जाने के बाद, उस वाक्य के कथ्य की पुष्टि के लिए दृष्टान्त या सन्देश के रूप में दोहराई जाती है। जैसे—'मित्र! उसकी बातों पर विश्वास मत करो। वह दिखावा बहुत करता है, पर अपने कथन पर कभी आचरण नहीं करता। सुना नहीं—हाथी के दाँत खाने के और दिखाने के और।'

कुछ प्रमुख मुहावरों और कहावतों के उदाहरण

मुहावरे

(अ)

अंकुश रखना—मनमानी न करने देना।
छोटे बच्चों पर अधिक अंकुश रखने से वे डरपोक बन जाते हैं।
अंग-अंग ढीला होना—बहुत थक जाना।
सुबह से काम समाप्त ही नहीं हो रहा। मेरा तो अंग-अंग ढीला हो गया।
अँगूठा दिखाना—इन्कार कर देना।
मैंने जब भी उससे सहायता माँगी, उसने हर बार अँगूठा दिखा दिया।

अन्धे की लकड़ी–एक मात्र सहारा।

अब तो राहुल ही अपनी माता के लिए अन्धे की लकड़ी के समान है।

अँधेरे घर का उजाला–इकलौता पुत्र।

श्रीमती सोनिया गांधी के लिए राहुल ही अँधेर घर का उजाला है।

अक्ल का अन्धा–एकदम मूर्ख।

वीरेन्द्र जैसे अक्ल के अन्धे को समझाना भी व्यर्थ है।

अक्ल का दुश्मन–मूर्ख।

उस अक्ल के दुश्मन को चाहे जितना समझाओ, वह नहीं मानेगा।

अक्ल के पीछे लट्ठ लिए फिरना–बार-बार समझाने पर भी नादानी करना।

रामू तो अक्ल के पीछे लट्ठ **लिए फिरता है**, तभी तो हर एक से झगड़ा कर लेता है।

अक्ल चरने चली जाना–समझदारी से काम न लेना।

जब भाई साहब आपको सारी बात समझा रहे थे, तब क्या आपकी **अक्ल चरने चली गई थी**?

अक्ल पर पत्थर पड़ना–कुछ समझ में न आना।

न जाने मेरी **अक्ल पर क्या पत्थर पड़े** कि मैंने उसे सारा रहस्य बता दिया।

अगर-मगर करना–बहाने बनाकर टाल देना।

सुरेश को जब भी किसी काम के लिए कहो, वह **अगर-मगर करने लग जाता है।**

अपना उल्लू सीधा करना–स्वार्थ पूरा करना।

आजकल कोई किसी का साथ नहीं देता। हर एक **अपना उल्लू सीधा करने** में लगा है।

अपनी खिचड़ी अलग पकाना–दूसरों से एकदम अलग ढंग से सोचना या काम करना।

सभी विद्यार्थी तो मिलकर हॉकी खेल रहे हैं और मोती यहाँ बैठा **अपनी खिचड़ी अलग पका रहा है।**

अपने पाँव पर कुल्हाड़ी मारना–अपनी हानि स्वयं करना।

इस जुआरी को रुपया उधार देना स्वयं **अपने पैर पर कुल्हाड़ी मारने** के समान है।

अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना–स्वयं अपनी प्रशंसा करना।

आपकी बड़ाई तो तब जानें जब दूसरे भी प्रशंसा करें। **अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनने** से कोई महान् नहीं होता।

(आ)

आँख का काँटा होना–बुरा लगने वाला होना।

ईमानदार अफसर सभी बाबुओं की **आँख का काँटा होता है।**

आँख खुलना–भूल समझ लेना।

जब सभी ने उसकी चिकनी-चुपड़ी बातों में आने से इन्कार कर दिया तब कहीं उसकी **आँख खुली।**

आँख लगना–नींद आ जाना, प्रेम हो जाना।

(1) पढ़ते-पढ़ते कब मेरी **आँख लग गई,** मुझे पता ही नहीं चला।

(2) जब से उसकी किसी से **आँख लगी है,** तब से उसे कुछ और अच्छा ही नहीं लगता।

आँखें चार होना–एक-दूसरे को देखकर मुग्ध होना।

मेले की भीड़ में ज्योंही उनकी **आँखें चार हुईं** वे सुध-बुध भूल गए।

आँखें चुराना–लज्जा या डर के कारण सामने न आना।

तब तो रोज रुपया उधार ले जाते थे। अब लौटाने का समय आया तो **आँख चुराने** लग गए।

आँखें दिखाना–संकेत से मना करना, क्रोध करना, धृष्टता का व्यवहार करना।

यों **आँखें मत दिखाओ,** हम तुम्हारी धमकियों से डरने वाले नहीं।

आँखें नीची होना–लज्जा का अनुभव करना।

जब से लोगों को उसकी बेईमानी का पता चला है, सबके सामने उसकी **आँखें नीची हो गई हैं।**

आँखें बिछाना–आनन्द और उत्साह से स्वागत करना।

प्रधानमन्त्री के आगमन पर सारे नगरवासियों ने **आँखें बिछा दीं।**

आँखों का तारा–बहुत प्रिय।

होनहार और आज्ञाकारी बच्चा सबकी **आँखों का तारा बन जाता है।**

आँखों में धूल झोंकना–छल करना।

आपकी चालाकी एक-दो बार तो सफल हो सकती है, हर बार आप सबकी **आँखों में धूल नहीं झोंक सकते।**

आँधी के आम–बहुत सस्ती या बिना मूल्य वस्तु प्राप्त होना।

अरे, दो ही रुपए में इतने खिलौने ले आए! लगता है, **आँधी के आम** तुम्हारे हाथ लग गए।

आँसू पीकर रह जाना–दुःख को चुपचाप सहने पर मजबूर होना।

असहाय-अनाथ बच्चे जब लोगों को मौज उड़ाते देखते हैं तो **आँसू पीकर रह जाते हैं।**

आकाश के तारे तोड़ना–असम्भव कार्य को सम्भव कर दिखाना।

सच्चे कर्मवीर **आकाश के तारे भी तोड़** लाते हैं।

आकाश-पाताल एक करना–कठोर परिश्रम करना।

बिना **आकाश-पाताल एक** किए प्रथम श्रेणी में अंक पाना कठिन है।

आकाश-पाताल का अन्तर होना–बहुत अधिक फर्क होना।

आपके बनाए हुए चित्र और उसकी तस्वीर में तो **आकाश-पाताल का अन्तर है।**

आकाश से बातें करना–बहुत ऊँचा (लम्बा) होना।

दिल्ली का नया टी.वी. टॉवर **आकाश से बातें करता** प्रतीत होता है।

आग में घी डालना–क्रोध बढ़ाना, अधिक उत्तेजित करना, साधारण झगड़े को बढ़ा देना।

बच्चों में तो थोड़ी-बहुत नोंक-झोंक होती ही रहती है, आप उन्हें भला-बुरा कहकर **आग में घी न डालें।**

आग लगना–अत्यन्त क्रोध का अनुभव होना।

लक्ष्मण के बार-बार चिढ़ाने पर परशुराम के तन-बदन में **आग लग गई।**

आग लगाना–विरोध पैदा करना, झगड़ा शुरू कराना, उत्तेजित करना।

आप तो **आग लगाकर** अलग हो गए, वे दोनों तब से एक-दूसरे के साथ बोलते ही नहीं।

आपे से बाहर होना–क्रोध-वश स्वयं को काबू न रख पाना।

जरा-सी बात पर **आपे से बाहर** क्यों हो रहे हो? ज़रा शान्त मन से अच्छाई-बुराई का विचार करो।

आसमान सिर पर उठाना–बहुत शोर मचाना।

माता जी ज़रा-सी देर के लिए पड़ोस में गईं कि बच्चों ने **आसमान सिर पर उठा लिया।**

(इ)

इधर कुआँ उधर खाई–हर ओर विपत्ति की आशंका।

सरकार टैक्स न बढ़ाये तो योजनाएँ अधूरी रह जाएँगी और टैक्स बढ़ाए तो जनता विरोध का तूफान खड़ा कर देगी। उसके लिए **इधर कुआँ उधर खाई** वाली स्थिति है।

(ई)

ईंट का जवाब पत्थर से देना–अपने ऊपर वार करने या दोष लगाने वाले पर, उससे भी अधिक कठोरता से वार करना या दोष लगाना।

रक्षामन्त्री ने घोषणा की, यदि किसी देश ने भारत पर हमला किया तो हमारी सेनाएँ **ईंट का जवाब पत्थर से देंगी।**

ईंट से ईंट बजाना–तबाह कर देना।

सन् 1990 में संयुक्त सेनाओं ने इराक की **ईंट से ईंट बजा दी।**

ईद का चाँद होना–बहुत लम्बे समय तक दिखाई न देना।

आपको ऊँची सरकारी नौकरी क्या मिल गई, आप तो **ईद का चाँद हो गए!**

(उ)

उँगली उठाना–निन्दा करना, दोष लगाना।

सदा ऐसी सूझ-बूझ और ईमानदारी से काम करो कि किसी को **उँगली उठाने** का अवसर ही न मिले।

उँगली पर नचाना–(किसी को) अपनी इच्छानुसार चलाना, पूरी तरह वश में कर लेना।

आजकल राजनैतिक नेता सबको अपनी **उँगली पर नचाते हैं।**

उँगली पर नचाना–(किसी के) पूरी तरह वश में होना या (किसी के) कथनानुसार ही सारे कार्य करना।

हमें अपना हित-अहित स्वयं सोचना चाहिए। बिना सोचे-समझे राजनीतिज्ञों की उँगली पर नाचना उचित नहीं।

उड़ती चिड़िया पहचानना–बहुत अनुभवी होना, सूक्ष्म परख वाला होना।

हम तो उड़ती चिड़िया को पहचान लेते हैं, हमसे बहानेबाज़ी मत करो।

उन्नीस-बीस का अन्तर होना–बहुत साधारण फर्क होना।

हर विद्यार्थी के उत्तर में **उन्नीस-बीस का अन्तर होना** स्वाभाविक है।

उलटी गंगा बहाना–लोक-रीति या परम्परा के विरुद्ध सोचना (काम करना)।

तुम तो सदा **उलटी गंगा बहाते** हो, कभी तो सबके साथ चला करो।

उलटी माला फेरना–(किसी का) अहित चाहना, अपशकुन करना।

केन्द्र में उनकी सरकार बनते ही विपक्षी दलों ने **उलटी माला फेरनी** शुरू कर दी।

उलटी-सीधी कहना–डाँटना-फटकारना।

जब से उसके पिता जी नहीं रहे, अब उसे कोई **उलटी-सीधी कहने** वाला है ही नहीं।

उल्लू बनाना–बहकाना।

हर राजनीतिक दल जनता को **उल्लू बनाकर** वोट बटोरना चाहता है।

उल्लू बोलना–उजाड़ होना।

जब से राजतन्त्र समाप्त हुआ है, बड़े-बड़े राजमहलों में **उल्लू बोल** रहे हैं।

(ए)

एड़ियाँ रगड़ना–बहुत परिश्रम करना।

उसने बहुत एड़ियाँ रगड़ीं, पर सफल न हो सका।

एड़ी-चोटी का पसीना एक करना–कठोर परिश्रम करना।

आजकल तो मामूली-सा नौकरी पाने के लिए भी **एड़ी-चोटी का पसीना एक करना पड़ता है।**

(क)

कन्धे से कन्धा मिलाकर चलना–हर तरह से सहयोग करना।

आजकल हर क्षेत्र में महिलाएँ पुरुषों से **कन्धे से कन्धा मिलाकर चल रही हैं।**

कच्चा चिट्ठा खोलना–सारे रहस्य प्रकट कर देना।

देखो, मुझसे झगड़ा मोल मत लो, नहीं तो तुम्हारा सारा **कच्चा चिट्ठा खोलकर रख दूँगा।**

कमर कसना–दृढ़ निश्चय कर लेना, तैयार होना।

अब तो हमने इस बात पर **कमर कस ली** है कि विदेशों से उधार नहीं लेंगे।

कमर टूटना–बहत निराश या उत्साहहीन हो जाना।

जब से सेठ जी का इकलौता पुत्र दुर्घटना का शिकार हुआ है, उनकी **कमर टूट गई है।**

कलई खुलना–भीतरी वास्तविकता प्रकट हो जाना।

आज संसद में विपक्षी दल के नेता के बयान से सरकार की **कलई खुल गई।**

कलेजा मुँह को आना–आन्तरिक पीड़ा का अनुभव होना।

वह बेचारी विधवा जब अपने मासूम बच्चों को भूख से बिलबिलाता देखती है तो उसका **कलेजा मुँह को आने लगता है।**

कलेजे पर पत्थर रखना–धैर्यपूर्वक विपत्ति सह लेना।

भाग्य का फेर है। **कलेजे पर पत्थर रखना ही पड़ेगा।**

काँटे बिछाना–बाधा उत्पन्न करना।

देखो भाई! जुए और शराब की लत में फँस कर तुम अपने ही बच्चों की राह में **काँटे बिछा रहे हो।**

कागज काले करना–निरर्थक बातें लिखना।

उसे कुछ आता तो है नहीं, बस दिन-भर **कागज काले करता रहता है।**

काठ का उल्लू होना–एकदम बुद्धू होना।

वह तो **काठ का उल्लू** है, कुछ भी कहो, उस पर कोई असर नहीं होगा।

कान का कच्चा–विवेकहीन, किसी की निन्दा या शिकायत पर, बिना सोचे-समझे तुरन्त विश्वास कर लेने वाला।

अरे, दीनू पर कभी भरोसा मत करना। वह एकदम **कान का कच्चा है।**

कान कतरना (काटना)–बहुत चतुर होना।

उसे छोटा समझकर मत टालो। वह तो बड़े-बड़ों के **कान कतरता है।**

कान खड़े होना–सावधान होना, सँभल जाना।

जब से श्री राजीव गांधी की हत्या हुई है, तब से अन्य सभी नेताओं के **कान भी खड़े हो गए हैं।**

कान पर जूँ तक न रेंगना–बहुत कहने पर भी ध्यान न देना।

हम अपने मुहल्ले की गन्दगी के बारे में कई बार शिकायत कर चुके हैं, लेकिन अफसरों के **कान पर जूँ तक न रेंगी।**

कान भरना–बिना कारण चुगली या शिकायत करना।

जब से चपला ने कमला के **क़ान भरने** शुरू किए हैं, वह मुझसे सीधे मुँह बात ही नहीं करती।

कानों-कान खबर न होना–तनिक भी पता न चलना।

नेता जी सुभाषचन्द्र बोस ऐसी चतुराई से जर्मन पहुँचे कि अंग्रेज सरकार को **कानों-कान खबर न हुई।**

कानों को हाथ लगाना–भविष्य में भूल न दोहराने का निश्चय करना।

एक बार तुम्हें उधार देकर मैं बहुत पछता रहा हूँ। अब तो मैंने **कानों को हाथ लगा लिया है।**

काया पलट होना–एकदम बदल जाना, पूरी तरह नया रूप ग्रहण करना।

जब से नये आयुक्त ने कार्य-भार सम्भाला है, नगर का **काया पलट हो गया है।**

कुआँ खोदना–(किसी के) अनिष्ट का कारण पैदा करना।

जो देश-द्रोहियों का साथ देते हैं, वे अपने ही भविष्य के लिए **कुआँ खोदते हैं।**

कोल्हू का बैल–बिना लाभ मेहनत करने वाला। बहुत परिश्रमी।

आजकल दिन-भर **कोल्हू के बैल** की तरह पिसकर भी परिवार का पालन-पोषण करना कठिन है।

(ख)

खटाई में पड़ना–काम रुका रहना।

जब से चुनाव की घोषणा हुई है, तब से सारी योजनाएँ **खटाई में पड़ गई हैं।**

खरी-खोटी सुनाना–डाँटना-फटकारना।

जब मित्रों ने खूब **खरी-खोटी सुनाई** तो कुमार साथ चलने को तैयार हो गया।

खाला का घर न होना–काम आसान न होना।

एवरेस्ट की चढ़ाई **खाला का घर नहीं**। उसके लिए तो खूब अभ्यास करना होगा।

खून खौलाना–बहुत क्रोध या आवेश आना।

गुंडों द्वारा अपनी पड़ोसिन का अपमान होते देख कर रमेश का **खून खौलने लगा।**

(ग)

गड़े मुर्दे उखाड़ना–बीती बातों को बेकार दोहराना।

हमें समय के अनुसार भविष्य सुधारने की चिन्ता करनी चाहिए। अब **गड़े मुर्दे उखाड़ना** बेकार है।

गरीबी में आटा गीला होना–एक विपत्ति पर दूसरी विपत्ति आना।

पिछले महीने तो उसकी नौकरी छूट गई और इस महीने मकान मालिक ने घर खाली करने का नोटिस दे दिया। इसी को कहते हैं **कंगाली में आटा गीला होना।**

गले का हार होना–बहुत चहेता (प्रिय) होना।

आजकल तो कन्हैयालाल मैनेजर साहब के **गले का हार बना हुआ है।**

गहरी छनना–पक्की दोस्ती होना।

आजकल सुरेश की मैनेजर साहब से **गहरी छनती है,** वह तुम्हारा काम जल्दी करा देगा।

गाँठ बाँधना–अच्छी तरह याद रखना।

मेरी बात **गाँठ बाँध लो,** जरा भी ढील दिखाओगे तो विरोधी तुम्हें डरपोक समझेंगे।

गागर में सागर भरना–कम शब्दों में बहुत कुछ कह देना।

कविवर बिहारी ने हर दोहे में मानो **गागर में सागर भर** दिया है।

गुड़ गोबर कर देना–बने-बनाए काम को बिगाड़ देना।

उन्होंने रंग-बिरंगे तम्बुओं से पार्क में बड़ी सजावट की थी, पर जोरदार वर्षा ने **गुड़ में गोबर कर दिया।**

गुदड़ी का लाल होना–ऊपर से साधारण दिखना पर गुणों में महान् होना।

आप उसके साधारण वस्त्र देखकर उसे मामूली आदमी मत समझिए। उसकी अनेक श्रेष्ठ पुस्तकें पुरस्कृत हो चुकी हैं। वह तो **गुदड़ी का लाल** है।

गुल खिलाना–चौंका देने वाला निन्दनीय काम करना।

यदि शरारती बच्चे पर अंकुश न रखा जाए तो वह रोज कोई न कोई नया **गुल खिलाता** रहेगा।

गोबर गणेश होना–एकदम बुद्धू या आलसी होना।

वह इतना बड़ा हो गया पर रहा **गोबर गणेश ही।**

(घ)

घास खोदना–समय व्यर्थ गँवाना।

इतने दिन क्या आप **घास खोदते रहे,** जो यह मामूली-सा काम भी नहीं कर सके?

घी के दिए जलाना–बहुत आनन्द मनाना।

राष्ट्रीय दल वालों ने चुनाव में भारी जीत होने पर **घी के दिए जलाए।**

घोड़े बेच कर सोना–एकदम निश्चिंत हो जाना।

एक महीने के बाद कहीं परीक्षा का बुखार उतरा है। अब तो हम **घोड़े बेच कर सोएँगे।**

(च-छ)

चाँद का टुकड़ा–बहुत सुन्दर।

उस **चाँद के टुकड़े** को देखकर सभी मुग्ध हो जाते हैं।

चाँदी का जूता–रिश्वत।

आजकल **चाँदी का जूता** दिखाकर कोई भी काम कराया जा सकता है।

चाँदी होना–बहुत अधिक लाभ होना।

नया बजट पेश होते ही पेट्रोल और गैस वालों की रातों रात **चाँदी हो गई।**

चार चाँद लगना–शोभा और बढ़ जाना।

हमारा विद्यालय पहले ही सब विद्यालयों से आगे था और अब नये प्राचार्य महोदय के आने के बाद तो उसे **चार चाँद लग गए हैं।**

चार चाँद लगाना–शोभा को अधिक बढ़ा देना।

आपने हमारे विद्यालय का संरक्षक बनकर इसे और भी **चार चाँद लगा दिए हैं।**

चिकना घड़ा–ढीठ, जिस पर किसी के उपदेश का असर न हो।

कालीचरण तो **चिकना घड़ा** है। उसे समझाने का कोई लाभ नहीं।

चींटी के पर निकलना–मुसीबत पैदा करने वाला काम करना।

तुम बिना तैयारी किए इतने बड़े पहलवान को चुनौती दे रहे हो। **लगता है चींटी के पर निकल आए हैं।**

चुल्लू भर पानी में डूब मरना–अत्यन्त लज्जा का अनुभव करना।

दोनों भाइयों की अच्छी नौकरी होने पर भी उनकी माँ दर-दर भटक रही है, यह उनके लिए **चुल्लू भर पानी में डूब मरने की बात है।**

छक्के छुड़ाना–बुरी तरह परास्त करना।

हमारी सेनाओं ने शत्रुओं के **छक्के छुड़ा दिए।**

छठी का दूध याद आना–बहुत अधिक दुर्दशा या कठिनाई होना।

अब तो बातें बना रहे हो, जब सचमुच उस घनघोर जंगल में जाना पड़ेगा तो **छठी का दूध याद आ जाएगा।**

छाती पर मूँग दलना–ढीठ बनकर सताते रहना।

बुरे पड़ोसी बार-बार रोकने पर भी हमारे घर के सामने कूड़ा फेंक का हमारी **छाती पर मूँग दलते हैं।**

छाती पर साँप लोटना–ईर्ष्या से जलना।

पड़ोसी की लाटरी निकलने का समाचार सुनकर उसकी **छाती पर साँप लोटने लगा।**

छोटे मुँह बड़ी बात–अपनी उम्र, हैसियत या योग्यता से बढ़कर बात करना।
एक विद्यार्थी शिक्षक को उपदेश दे, यह तो **छोटे मुँह बड़ी बात होगी।**

(ज-झ)

जली-कटी सुनाना–कठोर शब्द कहना।
उसकी सास बिना कारण उसे हर समय **जली-कटी सुनाती रहती है।**
जले पर नमक छिड़कना–किसी दुःखी व्यक्ति को और सताना।
एक तो वह बेचारा दुर्घटना में घायल हो गया, दूसरे आप उस पर मुकदमा चलाने की बात कह कर उसके **जले पर नमक छिड़क रहे हो।**
जहर उगलना–बहुत कठोर बातें कहना।
झगड़ालू सास बिना कारण ही बहू के विरुद्ध **जहर उगलती रहती है।**
जान पर खेलना–प्राणों की परवाह न करना।
हम **जान पर खेलकर** भी अपने देश के सम्मान की रक्षा करेंगे।
जान हथेली पर रखना–मृत्यु से न डरना।
हमारे जवान **जान हथेली पर रखकर** सीमाओं पर पहरा देते हैं।
जूती चाटना–अपने सम्मान को घटाकर खुशामद करते रहना।
वह कुछ काम तो करता नहीं, बस अफसरों की **जूती चाटता** रहता है।
झंडा गाड़ना–प्रतिष्ठा स्थापित करना (धाक जमाना)।
इस चुनाव में तो नयी पार्टी ने सबसे अधिक सीटें जीतकर **झंडा गाड़** दिया।

(ट-ढ)

टाँग अड़ाना–बाधा डालना।
तुम स्वयं तो कुछ करते नहीं, उलटे दूसरों के काम में **टाँग अड़ाते रहते** हो।
टाँय-टाँय फिस–झूठे बड़प्पन की पोल खुलना।
आप तो बड़ी डींग हाँक रहे थे। कुश्ती के मैदान में आते ही **टाँय-टाँय फिस** हो गई।
टेढ़ी खाना–अत्यन्त कठिन काम।
हमारा पड़ोसी बड़ा कंजूस है। उससे उधार ले पाना **टेढ़ी खीर है।**
ठगा-सा रह जाना–आश्चर्य से चकित रह जाना।
उस छोटे-से बालक को बिना सहारे ऊँचे खम्भे पर चढ़ते देखकर सब **ठगे से रह गए।**

ठोकरें खाना–मुसीबतें झेलते हुए भटकना।

आजकल नौजवान बी.ए., एम.ए. करके भी **ठोकरें खा रहे हैं।**

ढोल की पोल–ऊपरी महानता के भीतर हीनता।

नेता जी सभी विरोधियों की जमानत जब्त कराने का दम भरते थे, परन्तु चुनाव परिणाम निकलते ही उनके **ढोल की पोल** खुल गई।

(त-थ)

तलवे चाटना–अपना सम्मान खोकर भी चापलूसी करना।

स्वाभिमानी व्यक्ति बेईमान अफसरों के **तलवे चाटना** पसन्द नहीं करते।

तारे गिनना–रात-भर जागते रहना।

परीक्षा की चिन्ता के कारण वह **तारे ही गिनता** रहता है।

तिनके का सहारा–मुसीबत में कोई उम्मीद नजर आना।

इस घोर महँगाई के दिनों में कुछ भी भत्ता बढ़ जाता तो डूबते को **तिनके का सहारा मिले।**

तिल का ताड़ बनाना–साधारण-सी बात को बढ़ा-चढ़ा कर कहना।

उसने तो जरा-सी शिकायत की थी, आपने **तिल का ताड़ बना दिया।**

तूती बोलना–बहुत प्रभाव या प्रसिद्ध होना।

आजकल तो सब जगह राष्ट्रीय दल की **तूती बोल** रही है।

थाली का बैंगन–सिद्धान्तहीन होना।

आजकल के राजनीतिज्ञ तो **थाली का बैंगन हैं।** कभी इस दल में आ जाते हैं कभी उस दल में जा मिलते हैं।

(द-ध)

दाँत खट्टे करना–बुरी तरह हराना।

हमारी सेनाएँ किसी भी आक्रमणकारी के **दाँत खट्टे कर** सकती हैं।

दाँत पीसना–क्रोध प्रकट करना।

दाल न गलना–वश न चलना, सफलता न मिलना।

ईमानदार अफसर के सामने किसी तस्कर या ब्लैकिए की **दाल नहीं गलती।**

दाल में कुछ काला होना–सन्देह का आभास होना।

आप बहुत देर से इधर-उधर देख रहे है, जरूर **दाल में कुछ काला है।**

दूज का चाँद–कभी-कभी दिखाई देना।

हमारे मित्र जब से बड़े अफसर बने हैं, हमारे लिए तो वो **दूज का चाँद** हो गए हैं।

दूध का धुला–बहुत ईमानदार, दोष-रहित।

आज कोई भी नेता या नागरिक अपने को **दूध का धुला** नहीं कह सकता।

दो नौका और दो घोड़ों पर सवार होना–एक साथ दो कामों में उलझना, दुविधा में पड़ना।

आप या तो दिल लगाकर नौकरी कर लो या सिर्फ व्यापार करो। **दो नौकाओं पर सवार होना** बुद्धिमत्ता नहीं।

धज्जियाँ उड़ाना–बुरी तरह परास्त करना।

इस बार के चुनाव में राष्ट्रीय दल ने सभी विरोधियों की **धज्जियाँ उड़ा** दीं।

धूल चटाना–बुरी तरह हरा देना।

लव-कुश ने छोटी-सी आयु में ही बड़े-बड़े वीरों को **धूल चटा दी।**

धूल चाटना–हार जाना, एकदम क्षीण-हीन हो जाना।

बड़े-बड़े वीर लव-कुश के सामने **धूल चाटने** लग गये थे।

धूल में मिलना–बरबाद हो जाना।

उस भीषण भूकम्प में बड़े-बड़े भवन **धूल में मिल गए।**

धूल में मिला देना–बरबाद कर देना।

इस भूकम्प ने बड़ी-बड़ी इमारतों को **धूल में मिला दिया।**

नमक-मिर्च लगाना–किसी बात को बढ़ा-चढ़ाकर कहना।

कई समाचार पत्र हर बात को **नमक मिर्च लगाकर** छापते हैं।

नाक-कटना–अपमानित होना।

आज अपने ही बेटे की करतूतों के कारण महेश राव की **नाक कट गई।**

नाक काटना–अपमानित करना।

उस दुष्ट कपूत ने भरी पंचायत में पंचों को अपशब्द कहकर उनकी **नाक काट दी।**

नाक पर मक्खी न बैठने देना–अपने पर कोई दोष न आने देना, स्वाभिमानी होना।

राजा भैया हर काम सोच-समझकर करता है, कभी **नाक पर मक्खी नहीं बैठने देता।**

नाक रखना–सम्मान की रक्षा करना।

आज अपने इस मुसीबत से सहारा देकर मेरी **नाक रख ली।**

नाक रगड़ना–बड़ी दीनता से अनुनय-विनय करना।

मैंने उस अधिकारी के सामने बहुत नाक रगड़ी, पर उसने मेरी एक न सुनी।

नाकों चने चबवाना–बुरी तरह परास्त करना।

भारत पर यदि किसी ने आक्रमण की मूर्खता की तो हमारी सेनाएँ उसको **नाकों चने चबवा** देंगी।

निन्यानवे के फेर में आना (पड़ना)–हर समय धन जुटाने की फिक्र करना।

इतने बूढ़े होकर भी आप **निन्यानवे के फेर में** क्यों पड़े हुए हैं? अब तो आपको विश्राम करना चाहिए।

नींव का पत्थर होना–मूल आधार।

हजारों शहीदों ने **नींव का पत्थर** बनकर स्वाधीनता का महल खड़ा किया।

नौ-दो ग्यारह होना–एकदम भाग जाना।

सिपाही की सीटी सुनते ही चोर **नौ-दो ग्यारह हो गया।**

(प-फ)

पगड़ी उछालना–अपमानित करना।

उस दुष्ट कपूत ने भरी सभा में पिता की **पगड़ी उछाल** दी।

पत्थर की लकीर होना–अटल होना।

सच्चे ईमानदार व्यक्ति की हर बात **पत्थर की लकीर होती है।**

पलकें बिछाना–आनन्द और उत्साह से स्वागत करना।

जब राष्ट्रपति जी पधारे तो सारे नगर ने अपनी **पलकें** बिछा दीं।

पहाड़ टूट पड़ना–बहुत बड़ी विपत्ति आना।

इस छोटी-सी उम्र में पिता का सहारा छिन जाने से उस पर तो **पहाड़ टूट पड़ा है।**

पाँचों उँगलियाँ घी में होना–हर प्रकार से लाभ होना।

जब से मुकेशचन्द के भाई साहब मन्त्री बने हैं, उनकी **पाँचों उँगलियाँ घी में** हैं।

पाँव (पैर) उखड़ जाना–हार जाना।

अर्जुन ने ऐसे बाण बरसाए कि कुछ ही समय में कौरवों के **पैर उखड़ गए।**

पानी का बुलबुला–अस्थायी।

धन-दौलत तो **पानी का बुलबुला** है, उसका अहंकार उचित नहीं।

पानी-पानी होना–बहुत लज्जा अनुभव करना।

सभी से अपने पुत्र की शिकायत सुनकर लीलाराम जी **पानी-पानी हो गए।**

पानी फेर देना–बेकार कर देना।

आपकी थोड़ी-सी असावधानी ने हमारी दो साल की मेहनत पर **पानी फेर दिया।**

पानी में आग लगाना–असम्भव काम को सम्भव कर दिखाना।

सच्चे कर्मवीर **पानी में भी आग लगाकर दिखा देते हैं।**

पापड़ बेलना–बहुत तरह के काम करते हुए भटकना।

आजकल तो छोटी-सी नौकरी के लिए बहुत **पापड़ बेलने** पड़ते हैं।

पारा चढ़ना–बहुत क्रोध आना।

भैया, उससे जरा प्यार से बात करना, उसका तो हर समय पारा चढ़ा रहता है।

पीठ दिखाना–हार कर भाग जाना, हार मान लेना।

सच्चे वीर चाहे बलिदान हो जाएँ पर युद्ध में **पीठ नहीं दिखाते।**

पेट काटना–भूखे रहना, भूख से कम खाकर निर्वाह करना।

माँ अपना **पेट काट कर** भी बच्चों का पालन करती है।

पेट में चूहे कूदना (दौड़ना)–बहुत भूख लगना।

भाई, सुबह से शाम हो गई, कुछ खाने-पीने का प्रबन्ध करो, **मेरे पेट में तो चूहे दौड़ रहे हैं।**

पेट में दाढ़ी होना–कम उम्र में ही बहुत होशियार होना।

उसे बच्चा समझकर टालो नहीं, उसके तो **पेट में दाढ़ी** है।

फूँक-फूँक कर पैर रखना–हर काम सावधानी से करना।

नए व्यवसाय में **फूँक-फूँक कर पैर रखना** चाहिए, तभी सफलता मिलती है।

फूला न समाना–अत्यन्त हर्षित होना।

परीक्षा-फल में अपनी प्रथम श्रेणी देखकर वह **फूला न समाया।**

(ब-भ)

बच्चों का खेल होना–बहुत सरल कार्य।

इस पहाड़ी पर चढ़ना तो हमारे लिए **बच्चों का खेल** है।

बहती गंगा में हाथ धोना–अवसर से लाभ उठाना।

आज बाढ़-पीड़ितों को सरकार की ओर से अनाज और फल बाँटे जा रहे हैं, आप भी लाइन में लगकर बहती **गंगा में हाथ धो लो।**

बाँह पकड़ना–सहारा देना, जीवन-साथी बनाना।

जब आपने मेरी **बाँह पकड़ी** है तो जीवन-भर साथ निभाना पड़ेगा।

बाट जोहना–इंतजार करना।

आपकी **बाट जोहते** हुए हमारी तो आँखें भी थक गईं।

बाल बाँका न होना–तनिक भी हानि न पहुँचना।

यदि आप सच्चे और ईमानदार हैं तो आपका **बाल भी बाँका नहीं** हो सकता।

बाल-बाल बचना–मुसीबत से फँसते-फँसते बचाव हो जाना।

आज एक भीषण कार-दुर्घटना में नेताजी **बाल-बाल बच गए।**

बालू की भीत–अस्थिर।

धन-दौलत तो **बालू की भीत** है, उसका घमंड नहीं करना चाहिए।

बीड़ा उठाना–जिम्मेदारी लेना।

अब हमने इस योजना को पूरा करने का **बीड़ा** उठा लिया है।

भाड़ झोंकना–व्यर्थ के कामों में समय गँवाना।

पिछले दो साल से हम **भाड़ झोंकते रहे** और हमारे साथी ऊँचे पद पर पहुँच गए।

भाड़े का टट्टू–धन के लोभ से साथ देने वाला।

वह तो **भाड़े का टट्टू** है। उसे रुपए देकर कुछ भी काम करा लो।

(म)

मक्खन लगाना–चापलूसी करना।

उसे अफसरों को **मक्खन लगाने** की कला खूब आती है, इसलिए उसका काम बन जाएगा।

मक्खी पर मक्खी मारना–बिना सोचे-समझे (ज्यों-की-त्यों) नकल करता।

शीला ने मोहिनी की कापी देखकर **मक्खी पर मक्खी मार दी,** लेकिन पकड़ी गई और फेल हो गई।

मक्खियाँ मारना–निकम्मे बैठे रहना।

जब से कारखाने में हड़ताल हुई है, बेचारे मजदूर मक्खियाँ मारते रहते हैं।

मन के लड्डू बाँधना–लाभ की कल्पना से खुश होना।

जब से उसने लाटरी का टिकट खरीदा है, बस **मन के लड्डू बाँधता रहता** हैं।

माथा रगड़ना–अत्यन्त दीनता से विनय करना।

कालू ने जमींदार के पैरों पर बहुत **माथा रगड़ा,** पर कुछ भी न मिला।

मिट्टी का माधो–एकदम बुद्धू।

मिट्टी का माधो बैठे रहने से बात नहीं बनेगी, कुछ-न-कुछ काम करो।

मिट्टी में मिला देना–बरबाद कर देना।

ईराक ने कुवैत को **मिट्टी में मिला देने** की बहुत कोशिश की पर सफल न हो सका।

मुँह में पानी भर आना–लालच होना।

मेले में मिठाइयों की दूकानें देखकर बच्चों के **मुँह में पानी भर आना** स्वाभाविक है।

मुँह लटकाना–नाराज हो जाना, रूठ जाना।

मित्र, अपनों को उचित-अनुचित समझाना ही पड़ता है, आप **मुँह लटका कर क्यों** बैठ गए।

मुँह से फूल झड़ना–मधुर और प्रिय बातें करना।

दीक्षा की सहेली जब बोलती है तो लगता है जैसे **मुँह से फूल** झड़ रहे हों।

मुट्ठी गर्म करना–रिश्वत देना।

आजकल तो किसी भी कर्मचारी की **मुट्ठी गर्म करके** काम निकाला जा सकता है।

(र)

रंग में भंग होना–सुख के वातावरण में अचानक दुःख आ जाना।

उन्होंने बच्चे के जन्मदिन पर खूब पंडाल सजाया था पर भीषण बरसात से **रंग में भंग हो गया।**

रँगा सियार होना–ढोंगी होना।

भैया, आजकल के नेता तो **रँगे सियार** हैं। वे बड़ी-बड़ी बातें करते हैं पर उनका असली रूप कुछ और होता है।

राई से पर्वत करना–तनिक-सी बात को बढ़ा-चढ़ाकर कहना।

उनमें जरा-सी बात पर कुछ अनबन हो गई है, दूर हो जाएगी। बेकार राई का पर्वत करना ठीक नहीं।

रोड़ा अटकाना–बाधा डालना।

हरएक के काम में **रोड़ा अटकाना** उसका स्वभाव है।

लकीर का फकीर होना–बिना सोचे-समझे रूढ़ियों को मानना।

अब समय बहुत बदल गया है। विज्ञान के इस युग में **लकीर का फकीर होना** उचित नहीं।

लट्टू होना–मुग्ध होना।

अनूप जलोटा का मधुर गायन सुनकर सभी **लट्टू हो जाते** हैं।

लोहा मानना–प्रभाव की महानता स्वीकार करना।

एक दिन भारत ऐसा शक्तिशाली देश बनेगा कि सभी को उसका **लोहा मानना** पड़ेगा।

लोहा लेना–डटकर मुकाबला करना।

हमारी सेनाओं ने बड़े-बड़े शक्तिशाली शत्रुओं से **लोहा लिया** है।

लोहे के चने चबाना–बहुत मुसीबत (कठिनाई) झेलना।

पाकिस्तान को बंगलादेश के युद्ध में **लोहे के चने चबाने पड़े**।

(श-ह)

श्रीगणेश करना–शुभ आरम्भ करना।

प्रधानमन्त्री महोदय दीप जलाकर इस महोत्सव का **श्रीगणेश** करेंगे।

सिर-माथे पर बैठाना–बहुत आदर देना।

विद्वान व्यक्ति कहीं भी चला जाए, सभी उसे **सिर-माथे पर बैठाते** हैं।

हथियार डाल देना–पराजय स्वीकार करना।

बंगला देश के युद्ध में पाकिस्तानी सेनाओं को **हथियार डाल देने पड़े**।

हवा लगना–बुरी संगत का प्रभाव पड़ना।

अब तो छोटे-छोटे बच्चों को भी अपराध-फिल्मों की **हवा लग गई** है।

हवा से बातें करना–बहुत तेज चलना।

बटन दबाते ही उसका स्कूटर **हवा से बातें करने** लगा।

हाँ में हाँ मिलाना–समर्थन करना।

सभी शक्तिशाली और धनवान लोगों की **हाँ-में-हाँ मिलाते** हैं।

हाथ पर हाथ रखकर बैठना–निठल्ला रहना।

हाथ पर हाथ रखकर बैठे रहने से समस्या नहीं सुलझेगी। कोई उपाय तो करना ही पड़ेगा।

हाथ मलना–पछताना।

अभी से परिश्रम न किया तो बाद में **हाथ मलने** पड़ेंगे।

हाथों के तोते उड़ जाना–बहुत घबरा जाना।

गोदाम पर पुलिस का छापा पड़ने का सामाचार सुनते ही लालाजी के **हाथों के तोते उड़ गए।**

होश ठिकाने आना–अहंकार चूर हो जाना।

अब तो यह बहुत बातें बना रहा है। जब जेल में चक्की पीसनी पड़ेगी तो **होश ठिकाने आ जाएँगे।**

कहावतें

(अ)

अंत भला सो भला–कार्य की समाप्ति ठीक प्रकार से हो जाए तो पहले की सारी त्रुटियाँ महत्त्वहीन हो जाती हैं।

हम तो मौसम की खराबी के कारण घबरा रहे थे, पर किसी तरह कार्यक्रम आराम से पूरा हो गया। **अंत भला सो भला।**

अंधा क्या चाहे, दो आँखें–किसी को अभीष्ट वस्तु मिल जाए तो फिर और कुछ आवश्यकता नहीं रहती।

वह दो साल से बेकार है, उसे यह नौकरी मिल जाए तो और क्या चाहिए। **अंधा क्या चाहे दो आँखें।**

अंधा बाँटे रेवड़ी, फिर-फिर अपनों को ही दे–केवल अपने सम्बन्धियों और प्रियजनों को लाभ पहुँचाना।

भैया आजकल तो मन्त्रियों और सांसदों के प्रियजनों को ही नौकरियाँ मिल रही हैं। सुना नहीं–**अंधा बाँटे रेवड़ी, फिर-फिर अपनों को ही दे।**

अंधों में काना राजा–बहुत-से आयोग्य व्यक्तियों में थोड़ा समझदार भी बहुत आदरणीय होता है।

गाँव में तो मिडिल पास चौकिदार भी अफसर से कम नहीं। क्योंकि **अंधों में काना राजा होता है।**

अंधेर नगरी चौपट राजा–जहाँ अराजकता और अव्यवस्था का बोलबाला हो, वहाँ न्याय की आशा नहीं करनी चाहिए।

अब तो इस राज्य में कोई कानून-व्यवस्था है ही नहीं। **अन्धेर नगरी चौपट राजा** वाला हाल हो रहा है।

अधजल गगरी छलकत जाए–कम योग्य व्यक्ति ही अधिक बातें बनाता है।

उसने जरा-सी अंग्रेजी क्या सीख ली है, हर समय उपदेश ही देता रहता है। ठीक ही है–**अधजल गगरी छलकत जाए।**

अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता–केवल एक व्यक्ति किसी योजना को सफल नहीं बना सकता।

मित्र, कुछ और दोस्तों को साथ लेकर ही काम शुरू करना; क्योंकि **अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता।**

(आ)

आँखों के अंधे नाम नयनसुख–नाम या प्रसिद्धि के अनुकूल गुण न होना।

उनकी दुकान का नाम तो है 'सस्ता भंडार' लेकिन वहाँ हर वस्तु बाजार-भाव से महँगी मिलती है। यह तो वही बात हुई–**आँखों के अंधे नाम नयनसुख।**

आम के आम गुठलियों के दाम–हर प्रकार से लाभ ही लाभ होना।

भाई, समाचारपत्र के कई लाभ हैं। दुनिया-भर की जानकारी भी मिल जाती है और रद्दी के काफी पैसे भी मिल जाती हैं। **आम के आम गुठलियों के दाम।**

आसमान से गिरा खजूर में अटका–काम बनते-बनते बीच में ही रुक जाए।

कई महीनों के बाद तो सरकार ने उसकी पेंशन मंजूर की, पर अब बैंक वालों ने अड़चन डाल दी। उसकी तो वही दशा है–**आसमान से गिरा, खजूर में अटका।**

आए थे हरि भजन को, ओटन लगे कपास–ऊँचे आदर्श का संकल्प लेकर, व्यर्थ की बातों में उलझ जाना।

हमारे साथी घर से तो मैच खेलने गए, पर रास्ते में बस वालों का झगड़ा ही देखते रह गए। वही बात हुई–**आए थे हरि भजन को, ओटन लगे कपास।**

(उ-ऊ)

उलटा चोर कोतवाल को डाँटे–दोषी (अपराधी) या आयोग्य व्यक्ति द्वारा ईमानदार और योग्य व्यक्ति की आलोचना करना।

एक तो आप स्वयं देर से आए और उस पर आते ही हमें भला-बुरा कहने लगे। यह तो वही बात हुई–**उलटा चोर कोतवाल को डाँटे।**

ऊँची दुकान फीका पकवान–नाम या प्रसिद्धि के अनुसार गुण न होना।

हमने तो इस उपन्यास का नाम सुनकर सोचा था कि इसमें जीवन की सच्ची तस्वीर होगी, पर इसमें तो सिवाय कोरी कल्पना के कुछ भी नहीं। सच है–**ऊँची दुकान फीका पकवान।**

ऊँट के मुँह में जीरा–जहाँ बहुत अधिक आवश्यकता हो वहाँ बहुत कम देना।

भोपाल के हजारों गैस-पीड़ितों के लिए कुछ ही लाख रुपए की सहायता तो ऊँट के मुँह में जीरा है।

(ए-ओ)

एक अनार सौ बीमार–एक ही वस्तु को लेने वाले बहुत होना। आजकल एक क्लर्क की नौकरी के लिए हजारों अर्जियां आ जाती हैं। **एक अनार सौ बीमार** वाली बात हो रही है।

एक तो करेला, दूसरे नीम चढ़ा–किसी दुष्ट का एक और नीच से संयोग हो जाना।

सीसराम तो पहले ही झगड़ालू है, उस पर यह बेईमानी भी उसका साथ बन गया है। **एक तो करेला दूसरे नीम चढ़ा।**

एक पंथ दो काज–एक ही उपाय से दो उद्देश्य पूरे हो जाना।

चलिए, हम भी साहित्य सम्मेलन में चलते हैं। कुछ अच्छे विचार सुनने को मिलेंगे और पुराने मित्रों से भेंट भी हो जाएगी। **एक पंथ दो काज।**

एक मछली सारे तालाब को गंदा कर देती है–एक ही व्यक्ति की नीचता से पूरा परिवार या समाज बदनाम हो जाता है।

हममें से हर एक को सावधान रहना होगा, क्योंकि **एक मछली सारे तालाब को गंदा कर देती है।**

एक म्यान में दो तलवारें नहीं समा सकतीं–एक के योग्य स्थान या अधिकार पर एक साथ दो को स्थान या अधिकार नहीं मिल सकता।

इस दफ्तर में या तो आपका हुक्म चलेगा या मेरा। **एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं।**

एक हाथ से ताली नहीं बजती–झगड़ा या विवाद का कारण कोई अकेला व्यक्ति या एक पक्ष नहीं होता, दूसरे का भी कुछ योग होता है (अथवा–जब तक दोनों पक्ष न चाहें, किसी एक पक्ष के चाहने से ही विवाद नहीं सुलझ सकता)

भई, जब वह हमारी बात मानकर समझौता करने को तैयार है, तो आप भी कुछ उदारता दिखाइए। क्योंकि **एक हाथ से ताली नहीं बजती।**

ओखली में सिर दिया तो मूसलों से क्या डरना–जब किसी बड़े काम में हाथ डाला जाए तो परिश्रम या कठिनाई (बाधाओं) से नहीं डरना चाहिए।

जब समाज सेवा का बीड़ा उठाया है, तो बाधाओं से क्यों डर रहे हो? **ओखली में सिर दिया तो मूसलों से क्या डरना?**

ओछे की प्रीत जैसे वालू की भीत–नीच व्यक्ति की मित्रता क्षणिक होती है।

हम तो पहले ही आपको उस दुष्ट से दूर रहने के लिए कह रहे थे। सुना नहीं, **ओछे की प्रीत जैसे वालू की भीत!**

(क-ख)

कहाँ राजा भोज कहाँ गंगू तेली–बहुत अधिक धनवान या योग्य व्यक्ति की समता कोई साधारण व्यक्ति नहीं कर सकता।

यह मामूली-सा दूकानदार उस उद्योगपति की बरावरी नहीं कर सकता। भला **कहाँ राजा भोज, कहाँ गंगू तेली!**

काठ की हँडिया वार-वार नहीं चढ़ती–छल अथवा झूठ से सदा सफलता नहीं मिलती।

वह एक वार तो झूठ बोल कर वच निकला, पर इस बार पुलिस ने उसे दबोच ही लिया। **काठ की हँडिया वार-वार नहीं चढ़ती।**

कोयलों की दलाली में हाथ काले–बुरे कार्य या साथ से संयोग होने पर बदनामी होती ही है।

जब तुम जुआरियों की संगत में रहोगे तो बदनामी तो होगी ही। सुना नहीं–**कोयलों की दलाली में हाथ काले।**

खिसियानी विल्ली खम्भा नोचे–अपनी भूल के दुष्परिणाम पर खीझकर दूसरों की आलोचना करना।

जब एक चुनाव में उसकी हार हुई है, वह हर एक से लड़ता फिरता है। वही बात है–**खिसियानी विल्ली खम्भा नोचे।**

खोदा पहाड़ निकली चुहिया–बहुत अधिक परिश्रम और प्रचार के बावजूद तनिक-सी सफलता मिलना।

चार महीनों से इस महोत्सव का प्रचार सुन रहे थे, पर स्कूल वच्चों के चुटकलों के सिवा कुछ भी न सुन पाए। **खोदा पहाड़, निकली चुहिया।**

(ग-घ)

गंगा गए गंगादास, जमुना गए जमुनादास–अवसरवादी होना।

आजकल किसी भी राजनीतिज्ञ का भरोसा नहीं किया जा सकता। उनकी तो नीति ही यही है कि **गंगा गए तो गंगादास जमुना गए तो जमुनादास।**

गेहूँ के साथ घुन भी पिस जाता है–दुष्ट की संगत में सज्जन को भी हानि उठानी पड़ती है।

उन झगड़ालू गुंडों के साथ बेचारा कंडक्टर भी गिरफ्तार हो गया। सच है, **गेहूँ के साथ घुन भी पिस जाता है।**

घर का भेदी लंका ढाए–अपने ही जानकार या सम्बन्धी (मित्र) द्वारा रहस्य खोलकर हानि पहुँचाना।

बैंक के चौकीदार की सहायता से ही डाकू सब कुछ लूट ले गया। सच है–**घर का भेदी लंका ढाए।**

(च-ज)

चमड़ी जाए गए दमड़ी न जाए–अपने शरीर और स्वास्थ्य की हानि करके भी कंजूसी की आदत न छोड़ना।

दोस्त, इस दूकानदार से तुम्हें कुछ भी चन्दा नहीं मिलेगा। इसका तो सिद्धान्त है–**चमड़ी जाए पर दमड़ी न जाए।**

चार दिन की चाँदनी फिर अँधेरी रात–सुख-वैभव अधिक दिन नहीं रहता।

इस सफलता पर अधिक न इतराओ। समय बदलते देर नहीं लगती। सुना नहीं–**चार दिन की चाँदनी फिर अँधेरी रात!**

चोर की दाढ़ी में तिनका–दोषी या अपराधी व्यक्ति द्वारा किसी के कुछ न कहने पर भी स्वयं को निर्दोष सिद्ध करने के प्रयत्न में अपने आपको फँसा लेना।

शिक्षक ने जब बोर्ड पर कार्टून बनाने वाले का नाम पूछा तो दिनेश झठ बोल उठा–मैंने तो नहीं बनाया। शिक्षक समझ गए कि उसी की शरारत है। इसी को कहते हैं–**चोर की दाढ़ी में तिनका।**

चोर-चोर मौसेरे भाई–दुष्ट लोगों में जल्दी मित्रता हो जाती है।

मैनेजर ने जब चौकीदार को चोरी करते पकड़ लिया तो उसका साथी दूसरा चौकीदार कहने लगा–इसने चोरी नहीं की। तब मैनेजर को कहना पड़ा–**चोर-चोर मौसेरे भाई।**

छछूँदर के सिर में चमेली का तेल–अयोग्य या तुच्छ व्यक्ति को सहसा बहुत धन-वैभव प्राप्त हो जाना।

इस गँवार को तुम लोगों ने मन्त्री चुनकर यह कहावत सच कर दी कि **छछूँदर के सिर में चमेली का तेल।**

जल में रहकर मगरमच्छ से वैर–अपने मुहल्ले या कार्यस्थान के वरिष्ठ लोगों के विरोध से हानि होती है।

मित्र, गाँव में रहकर सरपंच का विरोध उचित नहीं। भला **जल में रहकर मगरमच्छ से वैर** कैसे निभ सकता है!

जाके पैर न फटी बिवाई, सो क्या जाने पीर पराई–जिसे स्वयं जहाँ का अनुभव नहीं हुआ होता, वह दूसरों के दुःख-दर्द का अनुमान नहीं लगा सकता।

महलों में रहकर मजदूरों के दर्द का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। सच है, **जाके पैर न फटी बिवाई, सो क्या जाने पीर पराई।**

जाको राखे साइयाँ, मार सके न कोय–भाग्य अच्छा होने पर कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

इतने बड़े तूफान में भी वह बच्चा पेड़ की खोह में फँसकर बच गया। सच है, **जाको राखे साइयाँ, मार सके न कोय।**

जिसकी बिल्ली उसी को म्याऊँ–अपना उपकार करने वाले के ही विरुद्ध बातें करना (कृतघ्न होना)।

क्यों भाई, हमने ही तो तुम्हें यह चालाकी सिखाई और तुम हमें ही उस चालाकी से ठग रहे हो! यह तो वही बात हुई–**जिसकी बिल्ली उसी को म्याऊँ।**

जिसकी लाठी उसकी भैंस–शक्तिशाली को ही अधिकार और न्याय मिलता है।

आजकल उपाधियों और योग्यता को कोई नहीं पूछता। बस **जिसकी लाठी उसकी भैंस** वाली बात हो रही है।

जो गरजते हैं वो बरसते नहीं–बहुत बातें बनाने वाले काम कुछ नहीं करते।

वह बातें तो बहुत बनाता था पर जब काम करने का समय आया तो कहीं दिखाई नहीं दिया। इसीलिए तो कहा है–**जो गरजते हैं वे बरसते नहीं।**

(ड)

डूबते को तिनके का सहारा–बहुत बड़ी विपत्ति में तनिक-सी सहायता या आशा भी सन्तोष देती है।

भूखों मरने से तो पाँच सौ रुपये मासिक की नौकरी ही सही है। **डूबते को तिनके का सहारा** तो मिला।

(त-न)

तेते पाँव पसारिए जेती लम्बी सौर–अपनी आमदनी के अनुसार ही सोच-समझ कर व्यय करना चाहिए।

लोगों से उधार लेकर रोज सिनेमा देखते रहना ठीक नहीं। **तेते पाँव पसारिए, जेती लम्बी सौर।**

थोथा चना बाजे घना–अयोग्य व्यक्ति बढ़-चढ़कर बातें करता है।

नेता जी ने आज तक हमारी एक भी समस्या नहीं सुलझाई पर भाषण देने में खूब होशियार हैं। इसी को कहते है–**थोथा चना बाजे घना।**

दीवारों के भी कान होते हैं–गुप्त बात अधिक समय तक छिपी नहीं रहती।

आप किसी को बताए बिना अपनी योजना में लगे रहिए। सुना नहीं, **दीवारों के भी कान होते हैं।**

दूध का जला छाछ भी फूँक कर पीता है–एक बार किसी दुष्ट से धोखा खा जाने के बाद मनुष्य अपनों पर भी सन्देह करने लगता है।

जब से माता जी को घर पर बिस्कुट बेचने वाली महिला ठग कर ले गई है, तब से वे किसी को भी घर में नहीं घुसने देतीं। सच है, दूध **का जला छाछ भी फूँक कर पीता है।**

दूध का दूध पानी का पानी–सत्य और असत्य का स्पष्ट निर्णय।

हमारी न्यायपालिका दूध **का दूध पानी का पानी** कर देने के लिए विश्व-भर में प्रसिद्ध है।

दूर के ढोल सुहावने–स्वयं परखे बिना दूर की हर वस्तु अच्छी लगती है।

भैया, विदेशों की सैर का चस्का छोड़ो। जरा अपने देश में घूमो तो और भी आनन्द मिलेगा। सुना नहीं–**दूर के ढोल सुहावने।**

धोबी का कुत्ता घर का न घाट का–दुविधा में पड़े रहने वाले को कहीं भी शान्ति नहीं मिलती।

मेरा कोई ठिकाना नहीं, मैनेजर साहब जहाँ भेज देते हैं, वहीं चला जाता हूँ। **धोबी का कुत्ता घर का न घाट का।**

न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेगी–किसी काम के लिए कभी पूरी न होने वाली शर्त रखना।

सेठ जी कहते हैं, पहले पिछली सारी रकम लौटा दो, फिर आगे उधार दूँगा। रकम होती तो मैं उधार ही क्यों माँगता! यह तो टालने का बहाना है। **न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेगी।**

न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी–समस्या का मूल कारण मिटा देने पर समस्या स्वयं की समाप्त हो जाती है।

साहब, आप इस धूर्त लीडर को यहाँ से बाहर भिजवा दीजिए। तब और

कोई भी आपके काम में रोड़ा नहीं अटकाएगा; क्योंकि **न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी।**

नाच न जाने आँगन टेढ़ा–अपनी अयोग्यता को छुपाने के लिए किसी अन्य वस्तु या व्यक्ति की बुराई का बहाना करना।

भैया, आपको टाइप करने का अभ्यास तो है नहीं और नई मशीन को खराब बता रहे हैं। यह तो वही बात हुई–**नाच न जाने आँगन टेढ़ा।**

नाम बड़े और दर्शन छोटे–प्रसिद्धि और प्रचार के अनुकूल गुण न होना।

हम तो सेठ जी की दानवीरता की बहुत प्रशंसा सुनकर इनसे बाढ़-पीड़ितों के लिए चन्दा लेने आए थे, पर इन्होंने तो केवल पाँच रुपए देकर टाल दिया। सच है, **नाम बड़े और दर्शन छोटे।**

नौ दिन चले अढ़ाई कोस–बहुत समय तक परिश्रम करने के बाद भी आशा से बहुत कम फल मिला।

लेखक महोदय, आप तो पिछले साल से ही उपन्यास पूरा करने का दावा कर रहे थे। अभी तक पहला अध्याय भी पूरा नहीं हुआ। यह तो वही बात हुई–नौ दिन चले अढ़ाई कोस।

नौ सौ चूहे खाय बिल्ली हज को चली–अनेक अपराध करने वाले व्यक्ति द्वारा सज्जन होने या स्वयं में सुधार लाने का ढोंग रचाना।

वाह भैया! उस लीडर की बातों में आ गए! कल तक यह सारे दूकानदारों और पटरी वालों को गालियाँ देकर बलपूर्वक रुपए बटोरता था, आज हाथ जोड़कर उनका सेवक होने का दम भर रहा है। **नौ सौ चूहे खाय बिल्ली हज को चली।**

(प-म)

पाँचों उँगलियाँ बराबर नहीं होती–सभी का स्वभाव एक जैसा नहीं होता।

आप उनकी बातों से डर कर मुझ पर विश्वास नहीं कर रहे। **पाँचों उँगलियाँ बराबर नहीं होतीं।** आप एक बार आजमा कर तो देखिए।

बन्दर क्या जाने अदरक का स्वाद–अयोग्य और अविवेकी व्यक्ति गुणों की परख नहीं कर सकता।

अरे भाई, इस मूर्ख को चाणक्य-नीति क्या समझ आएगी! भला **बन्दर क्या जाने अदरक का स्वाद!**

भूखे भजन न होइ गोपाल–पेट खाली हो तो कोई भी अच्छी बात प्रभावित नहीं करती।

Accountant = लेखाकार/लेखापाल
Accountant General = महालेखाकार
Commissioner = आयुक्त
Auditor = लेखा-परीक्षक
Controller = नियन्त्रक
Controller General = महानियन्त्रक
Controller and Auditor General of India = भारत के नियंत्रक और महालेखा परीक्षक
Director = निदेशक, निर्देशक
Election Commissioner = निर्वाचन-आयुक्त
Income Tax Officer = आयकर अधिकारी
President = राष्ट्रपति, सभापति, प्रधान
Prime Minister = प्रधानमन्त्री
Minister = मन्त्री
Advocate = अधिवक्ता
Advocate General = महाधिवक्ता
Ambassador = राजदूत
Attachment Officer = कुर्की अधिकारी
Attesting Officer = तसदीक अधिकारी/साक्ष्यांकन अधिकारी
Block Development Officer = खंड-विकास-अधिकारी
Caretaker = रखपाल
Census Officer = जन-गण्ना अधिकारी
Claim Officer = दावा अधिकारी
Executive Engineer = कार्यपालक इंजीनियर/अभियन्ता
Superintending Engineer = अधीक्षक-अभियन्ता
Evaluation Officer = मूल्यांकन अधिकारी
Gatekeeper = दरबान
High Commissioner = उच्चायुक्त
Judge = न्यायाधीश
Agriculture Officer = कृषि-अधिकारी

Justice = न्यायमूर्ति
Legal Adviser = विधि-सलाहकार
Liaison Officer = सम्पर्क अधिकारी
Mayor = महापौर
Oath Commissioner = शपथ-आयुक्त
Ordnance Officer = आयुक्त अधिकारी
Receptionist = स्वागती, स्वागत अधिकारी
Recorder = अभिलेखक
Record-keeper = अभिलेख पाल
Recruitment Officer = भर्ती-अधिकारी
Scrutinizer = संवीक्षक
Session Judge = सत्र न्यायाधीश
Surveyor = सर्वेक्षक
Works Manager = कर्मशाला प्रबन्धक
Manager = प्रबन्धक
Chancellor = कुलाधिपति
Vice-chancellor = कुलपति
Pro-vice chancellor = समकुलपति
Registrar = कुलसचिव, पंजीयक
Vice-President = उपराष्ट्रपति, उप सभापति, उप प्रधान
Home Minister = गृहमन्त्री
Finance Minister = वित्तमन्त्री
Education Minister = शिक्षामन्त्री
Commerce Minister = वाणिज्यमन्त्री
External Affairs Minister = विदेश मन्त्री
Chief Minister = मुख्यमन्त्री
Secretary = सचिव, मन्त्री
Cabinet Secretary = मन्त्रीमंडलीय सचिव
Administrative Officer = प्रशासन अधिकारी
Superintendent = अधीक्षक
Superintendent of Police = पुलिस अधीक्षक

Architect	=	वास्तुविद
Chairman/Chair person	=	अध्यक्ष/सभापति
Consolidation Officer	=	चकबन्दी अधिकारी
Superintendent of Posts Teligraph	=	डाकतार अधीक्षक
Educational Adviser	=	सलाहकार
Estate Officer	=	सम्पदा अधिकारी
Excise Commissioner	=	उत्पादन शुल्क आयुक्त, आबकारी अधिकारी
Librarian	=	पुस्तकालयाध्यक्ष
Gazetted Officer	=	राजपत्रित अधिकारी
Health Officer	=	स्वास्थ अधिकारी
Honorary Secretary	=	अवैतनिक-सचिव
House Inspector	=	भवन निरीक्षक
House Tax Controller	=	गृहकर-समाहर्त्ता
Insurance Officer	=	बीमा अधिकारी
Chief Engineer	=	मुख्य इंजिनियर
Junior Engineer	=	कनिष्ठ इंजीनियर
Senior Engineer	=	वरिष्ठ इंजीनियर
Governor	=	उपराज्यपाल
Clerk	=	लिपिक
Superintendent Officer	=	शाखा अधिकारी/अनुभाग अधिकारी
Assistant	=	सहायक
Stenographer	=	आशुलिपिक
Post Master	=	डाकपाल
Supervisor	=	पर्यवेक्षक
Parliamentary Secretary	=	संसदीय सचिव
Patron	=	संरक्षक/पश्रयदाता

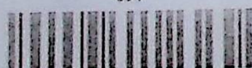
•••

पुस्तकालय

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या............... आगत संख्या..................

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित 30वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए। अन्यथा 50 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब शुल्क लगेगा।



महात्मा ज्योतिबा फुले रुहेलखंड विश्वविद्यालय की पाठ्य पुस्तक

बी. ए. प्रथम वर्ष (हिन्दी भाषा) द्वितीय प्रश्न पत्र

संपादन डॉ. शंकर लाल शर्मा

भाषा : व्यावहारिक धरातल

डॉ. रामप्रकाश, डॉ. दिनेश गुप्त



राजकमल प्रकाशन

नयी दिल्ली पटना इलाहाबाद